वैद्यकपरिभाषाप्रदीप ।

भाषाटीका ।

श्रीः ।

वैद्यकपरिभाषाप्रदीप ।

कृष्णवल्लभसेनतनयश्रीमद्गोविंदसेनसंगृहीत

जिसको

मुरादाबादनिवासी पं० ललिताप्रसादजीसे

भाषानुवादकराय

भिषग्वरोंकेअवलोकनार्थ-

खेमराज श्रीकृष्णदासने

मुम्बई,

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखानामें

छापकर प्रगट किया ।

संवत् १९५३, शके १८१८.

प्रस्तावना ।

समस्त वैद्यजनोंको सविनय निवेदन किया जाताहै कि,-आजकल प्राचीन वैद्यकशास्त्रका प्रचार शास्त्रोक्तरीतिके अनुसार जैसा आवश्यक है बहुधा कम है, कई एक वैद्यंमन्य आधुनिक वैद्य कुछ १ । २ छोटीसी पोथी पढे न पढे इतनेमें धन्वंतरीके गुरु हो बैठतेहैं और मनमानी औषध विना मान तौल्य योग समझेही बिचारे लाचार रोगियोंको देकर उनके शरीरमें स्वास्थ्य होवे तौभी उसको बिगाड देतेहैं.यह बात सैकडों जगह अनुभव में आती है. इसका कारण यह है कि, वैद्यकशास्त्र अत्यंत उपो कारक है परंतु उसमें जिस रोगपर जो औषध कहाहै उस रोगपर वह औषध कितना देना कौनसे औषधके बदलेमें कौनसे औषधीकी योजना करना यह बात वे लोक समझते नहीं . इससे ऊपरोक्त अनर्थ होताहै.- यह जान कर परमदयालु विद्वद्वर श्रीगोविन्दसेन पण्डित श्रेष्ठजीने-पूर्व कालके आयु र्वेदाचार्य मुनियोंके ग्रंथोंमें जो २ परिभाषा लिखीथी, उन सबका सारमम ग्रहण करके यह " वैद्यकपरिभाषाप्रदीपक " नामक ग्रंथ संग्रह करके निर्माण कियाहै.

यह ग्रंथ उन्होंने निर्माण किया और संस्कृतके अनभिज्ञ वैद्य लोगोंके हितार्थ मुरादाबाद निवासी पं० ललिताप्रसादजीने सरल हिंदीभाषाटीका बनाकर मेरे समीप भेजा । सो यह " वैद्यकपरिभाषाप्रदीपक " ग्रंथ मैंने स्वकीय " श्रीवेङ्कटेश्वर " छापाखानामें छापके प्रसिद्ध किया है ।

इस ग्रंथका संग्रह करके कुशल वैद्यजन इसके कहे हुए मान, औषधी योग, चूर्ण, कल्पना, औषध ग्रहण काल, अनुपान, औषधी तैयार करनेकी विधि आदि सब विषयोंको जान के रोगपर उपचार कर अपार यशको प्राप्त होकर इस मनुष्य जन्मको सार्थक करेंगे ।

आपका-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना

मुंबई.

वैद्यकपरिभाषाप्रदीपका

सूचीपत्र।

इति सूचीपत्र सम्पूर्ण ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेंकटेश्वर" छापाखाना–मुंबई.

श्रीः ।

वैद्यकपरिभाषाप्रदीप ।

भाषाटीकासमेत ।

नमोस्तुनीरदस्वच्छवपुषेपीतवाससे ।
यस्यास्येन्दुसुधांवंशीपपौशब्दस्वरूपिणी ॥ १ ॥

दोहा ।

राधावर जलधरवरण, सुन्दर श्याम शरीर ।
मुखप्रफुल्ल मोहन मयन, हरिदासकी पीर ॥ १ ॥

शब्दस्वरूपिणी वंशीनै जिनके मुखचंद्रकी माधुरीको पान कियाहै, उन नवीन घनकी समान शरीर वाले, निर्मल तनयुक्त, और पीताम्बर धारणकिये हुए श्रीकृष्णको नमस्कारहै ॥ १ ॥

कृष्णवल्लभसेनस्यतनुजेनावितन्यते ।
श्रीमद्गोविन्दसेनेनपरिभाषाप्रदीपकः ॥ २ ॥

कृष्णवल्लभसेनके पुत्र श्रीमद्गोविन्दसेन करके यह "परिभाषाप्रदीप" नामक ग्रन्थ संगृहीत हुआहै ॥ २ ॥

पूर्वैर्मुनिभिरादिष्टास्वेस्वेतन्त्रेक्वचित्क्वचित् ।
परिभाषामयासासासमाहृत्याविलिख्यते ॥ ३ ॥

पूर्वकालके आयुर्वेदाचार्य मुनियोंनें अपने २ बनाए ग्रंथोंमें कहीं २ जोपरिभाषाएँ लिखिहैं, उन सबका सारमर्म ग्रहण करके मेरे द्वारा यह ग्रन्थ संगृहीत होताहै ॥ ३ ॥

ध्वान्तेपथिचरिष्णूनांयथादीपःप्रदर्शकः ।
नानाशास्त्रज्ञभिषजांसंग्रहोऽयंतथाभवेत् ॥ ४ ॥

जिसप्रकार अन्धकारमें भ्रमण करनेंके समय पथिकका मार्ग दीखताहै, वैसेही अनेक शास्त्रजाननें वाले वैद्योंके लिये यह " परिभाषाप्रदीप " नामक ग्रंथ आयुर्वेद शास्त्रमें प्रवेश करनेंका मार्ग दिखानें वालाहै ॥ ४ ॥

खण्डैश्चतुर्भिरादिष्टःसंग्रहोनातिविस्तरः ।
वैद्याःकुर्वन्त्वत्रयत्नंव्यवहारार्थमुद्यताः ॥ ५ ॥

यह " परिभाषाप्रदीप " ग्रंथ बहुत न बढ़ाकर चार खण्डमें इसकीप्रस्तावनाका विषय वर्णन किया गया । व्यवहार करनें वाले वैद्योंको इस ग्रंथके प्रति यत्न प्रकट करना चाहिये ॥ ५ ॥

अव्यक्तानुक्तलेशोक्तसन्दिग्धार्थप्रकाशिकाः ।
परिभाषाःप्रकथ्यंतेदीपीभूताःसुनिश्चिताः ॥ ६ ॥

आयुर्वेदशास्त्रके विषय परिभाषाके सम्बन्धमें कोई २ स्थल अव्यक्त अर्थात् स्पष्ट नहीं लिखागया । किसी २ स्थानमें अनुक्त अर्थात् कुछभी नहीं कहागया और किसी स्थलमें कुछही लिखाहै, उन सब स्थलोंका संशय दूर करनेंके लिये अन्धकारका नाश करनें वाले दीपककी समान यह " परिभाषाप्रदीप " नामक ग्रंथ लिखाजाताहै । आयुर्वेदके सीखनें वाले वैद्यलोगोंका निश्चयही इस पुस्तकसे बडा उपकार होगा ॥ ६ ॥

अथप्रथमतोमानसूत्रंलि० ॥

तस्माच्चद्विविधंमानंकालिङ्गंमागधंतथा ।
कालिङ्गान्मागधंश्रेष्ठमेवंमानाविदोविदुः ॥ ७ ॥

कालिङ्गमान और मागधमान यह दोप्रकारके मानहैं, तिसमें कलिंग मानकी बनिसवत मागधमानही श्रेष्ठहै । पलहे कलिंगमान लिखाजाताहै ॥ ७ ॥

परिमाणंविनाक्कापिनौषधाज्जायतेफलम् ।
तस्मात्सर्वैयतन्तेऽत्रपरिमाणविधौसदा ॥ ८ ॥

पहले मानसूत्र लिखतेहैं। विनापरिमाणके औषधिसे कभीभी आरोग्यरूप उत्पन्न हुआ फल प्राप्त नहीं होता। इसकारण वैद्योंको यत्नके सहित इस परिमाणकें अनुसार औषधिका समस्त कार्यनिर्वाह करना चाहिये ॥ ८ ॥

शार्ङ्गधरस्त्वाह ।

नमानेनविनायुक्तिर्द्रव्याणांजायतेक्वचित् ।
अतःप्रयोगकार्यार्थमानमत्रोच्यतेमया ॥ ९ ॥

शार्ङ्गधरनें कहाहै कि, बिनापरिमाणके किसी द्रव्यके प्रयोगसे फलप्राप्त नहीं होता । तिसके लिये प्रयोगका सुभीता करनेंको मुझकरके यह मानसूत्र लिखा जाताहै ॥ ९ ॥

अन्यच्च ।

मानापेक्षितमाचार्य्याभेषजानांप्रकल्पनम् ।
मेनिरेयत्ततोमानमुच्यतेपारिभाषिकमिति॥ १० ॥

दूसरे ग्रंथमें कहाहै, और आयुर्वेदाचार्य भी कहा करतेहैं कि औषधिके प्रयोग करनेकी कल्पनाके सम्बन्धमें परिमाणके विना किसीफलके प्राप्त होनेंकी सम्भावना नहीं; इसकारण पारिभाषिक मानसंज्ञा कहीजातीहै ॥ १० ॥

तत्तुमतभेदान्नानाविधंभवति ।

जालान्तरगतैःसूर्यकरैर्ध्वंसीविलोक्यते ।
षड्ध्वंसीभिर्मरीचिःस्यात्ताभिःशड्भिश्चराजिका॥ ११
तिसृभीराजिकाभिश्चसर्षपःप्रोच्यतेबुधैः ।
यवोऽष्टसर्षपैःप्रोक्तोगुंजास्यात्तच्चतुष्टयम् ॥ १२ ॥
षड्भिश्चरत्तिकाभिःस्यान्माषकोहेमधामकौ ।

माषैश्चतुर्भिर्मानःस्याद्धरणंतन्निगद्यते ॥ १३ ॥
टंकःसएवकथितस्तद्द्वयंकोलउच्यते ।
क्षुद्रमोटरकश्चापिद्रंक्षणंसनिगद्यते ॥ १४ ॥
कोलद्वयंचकर्षःस्यात्सप्रोक्तंपाणिमानिकः ।
अक्षःपिचुःपाणितलंकिंचित्पाणिश्चतिन्दुकम् १५॥
बिडालपदकंचैवतथाषोडशिकामिता ।
करमध्योहंसपदंसुवर्णकवडग्रहः ॥ १६ ॥
उडुम्बरश्चपर्यायैःकर्षएवनिगद्यते ।
स्यात्कर्षाभ्यामर्द्धपलंशुक्तिरष्टमिकातथा ॥ १७॥
शुक्तिभ्याञ्चपलंज्ञेयंमुष्टिमात्रञ्चतुर्थिकाः ।
प्रकुञ्चषोडशीबिल्वंपलमेवात्रकीर्त्यते ॥ १८ ॥
पलाभ्यांप्रसृतिर्ज्ञेयाप्रसृतञ्चनिगद्यते ।
प्रसृतिभ्यामञ्जलिःस्यात्कुडवोर्द्धशरावकः ॥१९॥
अष्टमानश्चसज्ञेयःकुडवाभ्याञ्चमानिका ।
शरावोऽष्टपलंतद्वज्ज्ञेयमत्रविचक्षणैः ॥ २० ॥
शरावाभ्यांभवेत्प्रस्थचतुःप्रस्थैस्तथाढकम् ।
भाजनंकंसपात्रंचचतुःषष्टिपलञ्चतत् ॥ २१ ॥
चतुर्भिराढकैर्द्रोणःकलशोलल्वणोर्म्मणः ।
उन्मानश्चघटोराशिर्द्रोणपर्यायसंज्ञितः ॥ २२ ॥
द्रोणाभ्यांशूर्पकुम्भौचचतुःषष्टिशरावकः ।
शूर्पाभ्याञ्चभवेद्द्रोणीबृहद्द्रोणीचसास्मृता ॥२३॥
द्रोणीचतुष्टयंखारीकथितासूक्ष्मबुद्धिभिः ।

चतुःसहस्रपलिकाषण्णवत्याधिकाचसा ॥ २४ ॥
पलानांद्विसहस्रञ्चभारएकःप्रकीर्त्तितः।
तुलापलशतंज्ञेयःसर्वत्रैषविनिश्चयः ॥ २५ ॥
माषटङ्काक्षबिल्वानिकुडवःप्रस्थआढकः।
राशिर्द्रोणीखारीचेतियथोत्तरंचतुर्गुणाः ॥ २६ ॥

मतभेदसे परिमाण अनेक प्रकारका है; पहलेका लिङ्ग मान कहा जाताहै, जालीकें द्वारा गृहमें जो सूर्यकी किरण आनकर गिरतीहै, इस किरणके मध्यमें जो बडे छोटे २ परमाणु दिखाई देतेहैं तिनको ध्वंसी कहते हैं। उन छैः ध्वंसीकी एक मरीचि, छः मरीचिकी एक राजिका ॥११॥ तीन राजिकाकी एक सरसों, आठ सरसोंका एक जौ, चार जौकी एक गुंजा (रत्ति); छः रत्तीका एक मासा। हेम और धामक यह दो नाम भी मासेके हैं। चार मासेकी एक शान (आधा तोला); इसके दूसरे नाम धरण और टंकभीहै। दो शानका एक कोल (१ तोला), क्षुद्र, मोरटक और द्रंक्षण उसके दूसरे नामहैं। दो कोलका एक कर्ष (२ तोला); पाणि माणिक, अक्ष, पिचु, पाणितल, किंचित्, पाणि, तिन्दुक, बिडाल, पदक, षोडाशिका, करमध्य, हंसपद, सुवर्ण, कवडग्रह और उडम्बर यह कर्ष शब्दके दूसरे नाम हैं। दो कर्षका एक अर्द्धपल (४ तोला); शुक्ति और अष्टमिका इसके दूसरे नामहैं। दो अर्द्धपल या दो शुक्तिका एकपल (८ तोला); मुष्टिमात्र, चतुर्थिका, प्रकुञ्च, षोडशी और बिल्व; एकपलके यह सब दूसरे नाम हैं। दो पलकी एक प्रसृति; प्रसृत इसका दूसरा नामहै। दो प्रसृतिकी एक अंजलि; कुडव, अर्द्धशराव और अष्टमान, यह इसके दूसरे नाम हैं। (चक्रदत्तके टीकाकारनें " कुडवोऽष्टपलौ " अर्थात कुडव शब्दसे ८ पल अर्थात्

६४ तोला इस प्रकारकी व्याख्याकीहै ।) दो कुडवकी एक मानिका; शराव और अष्टपल इसके दूसरे नामहैं। दो शरावकी एकप्रस्थ । चार प्रस्थका एक आढ़क; भाजन, कंस और पात्र इसके दूसरे नामहैं, (६४ पलका १ आढक होताहै) चार आढकका एक द्रोण (३२ सेर) कलस लल्वन, अर्म्मन, उन्मान, घट और राशि यह सब द्रोणके दूसरे नामहैं। दो द्रोणका एक सूर्प, (६४ सेर) कुम्भ इसका दूसरा नामहै (६४ शरावका एक सूर्प होताहै) दोसूर्पकी एकद्रोर्णा (१२८ सेर); इसका दूसरा नाम बृहत् द्रोणी है । चार द्रोणीकी १ खारी (४००० छयानवे पल अर्थात् ५५२ सेरकी एक खारी होतीहै) दो हजार पल अर्थात् २५० सेरका एक भार होताहै और एक शतपल अर्थात् १२॥ सेरकी एक तुला होतीहै ॥

माषा, टंक, (शान) अक्ष(कर्ष) बिल्व (१ पल, ८ तोला, कुडव (३२ तोला) प्रस्थ (२ सेर) आढक (८ सेर) राशि (अर्थात् द्रोण ३२ सेर) द्रोणी (१२८ सेर) और खारी (५१२ सेर) यह क्रमानुसार चतुर्गुण, अर्थात् मासेसे टंक चतुर्गुण, टंकसे अक्ष चतुर्गुण, अक्षसे बिल्व चतुर्गुण और कुडवसे प्रस्थ चतुर्गुणहोताहै । इत्यादि ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥

गुञ्जादिमानमारभ्ययावत्स्यात्कुडवस्थितिः ।
द्रव्यार्द्रशुष्कद्रव्याणांतावन्मानंसमं मतम् ॥२७॥
प्रस्थादिमानमारभ्यद्विगुणञ्चद्रवार्द्रयोः ।
मानन्तथातुलायाश्चद्विगुणंनक्वचित्स्मृतम् ॥२८॥

एक रतिसे लेकर कुडवतक द्रव (गला, पतला, पानीसा) गीले और सुखे द्रव्यकी समान परिमाण अर्थात् औषधिका द्रव्यग्रहण करनेके समय द्रव (तरल) आर्द्र (भीजा हुआ) और सूखे द्रव्यका जैसा परिमाण (१ रतिसे लेकर कुड़वतक) लिखाहो सो तितनाही ग्रहणकरे। प्रस्थसे लेकर ऊपरको चाहैं जितना परिमाण हो, द्रव, आर्द्र और सूखे द्रव्यके असली परिमाणसे दूना द्रव्य ग्रहणकरे ॥ २७॥२८ ॥

मृद्वृक्षवेणुलौहादेर्भाण्डंयच्चतुरङ्गुलम् ।
विस्तीर्णञ्चतथोर्ध्वञ्चतन्मानंकुडवं वदेत् ॥ २९ ॥

मिट्टी, वृक्ष, बांश और लोहेका बना हुआ पात्र, चार अंगुल लम्बा, चार अंगुल चौड़ा और चार अंगुल ऊंचा हो इतने पात्रमें जितना जल अथवा तरल द्रव्य आसकताहै तिसको कुडव (अर्द्ध सेर) परिमाण कहतेहैं ॥ २९ ॥

यदौषधस्तुप्रथमंयस्ययोगस्यकथ्यते ।
तन्नामैवसयोगोहिकथ्यतेतत्रानिश्चयः ॥ ३० ॥

औषधिकायोग (नाम) कहनेके समय इस योगके पहले जिस औषधिका वर्णनहो, उस द्रव्यके नामानुसार इस योगका नाम निश्चय होगा। जैसे " दार्व्यादि पाचन " के पहिले दार्वी (दारूहलदी) कलिंग (इन्द्रजौ) मजीठ, बृहती, दारू, गुडूची, इस प्रकार लिखा रहनेसे उक्त दार्वीके प्रथम रहनेसे इसका नाम दार्व्यादि पाचन हुआहै ॥ ३० ॥

इति कालिङ्गपरिभाषाः ।

अथ मागधपरिभाषाः ।

त्रसरेणुस्तुविज्ञेयःत्रिंशद्भिःपरमाणुभिः ।
त्रसरेणोस्तुपर्य्यायनामध्वंसीनिगद्यते ॥ ३१ ॥
षड्ध्वंसीभिर्मरीचिःस्यात्षण्मरीच्यस्तुसर्षपः ।
षट्सर्षपैर्यवस्त्वेकोगुञ्जैकाचयवैस्त्रिभिः ॥ ३२ ॥
गुंजाभिर्दशभिःप्रोक्तोमाषकोब्रह्मणापुरा ।
हेमश्चधामकश्चैवपर्यायस्तस्यकीर्त्तितः ॥ ३३ ॥
चतुर्भिर्माषकैःशाणःसनिकाष्ठकमेवच ।
धरणशब्दोत्रज्ञेयःअन्यत्रशाणपर्यायेलिखितत्वात्
शाणौद्वौद्रंक्षणंविद्यात्कोलंवटकमेवच ॥ ३४ ॥
कर्षार्द्धंद्विगुणंकर्षसुवर्णश्चाक्षमेवच ।
किञ्चिद्बिड़ालपदकंपिचुःपाणितलंतथा ॥ ३५ ॥
उडुम्बरंतिन्दुकञ्चकवड़ग्रहमेवच ।
द्वेसुवर्णेपलार्द्धंस्याच्छुक्तिरष्टमिकातथा ॥ ३६ ॥
द्वेपलार्द्धेपलंमुष्टिःप्रकुञ्चश्चचतुर्थिका ।
बिल्वंषोडशिकाम्रञ्चद्वेपलेप्रसृतंविदुः ॥ ३७ ॥
कुड़वःप्रसृताभ्यांस्यादञ्जलिःसनिगद्यते ।
अष्टमानंशरावार्द्धंतस्यपर्यायमेवच ॥ ३८ ॥
कुड़वाभ्यांमानिकास्याच्छरावोऽष्टपलंतथा ।
माणिकाभ्यांभवेत्प्रस्थोज्ञेयःषोडशभिःपलैः॥३९॥

चतुःप्रस्थैराढ़कःस्यात्पात्रंकंसश्चभाजनम् ॥
अयंभिषग्भिराख्यातश्चतुष्षष्टिपलैरिह ॥ ४० ॥
चतुर्भिराढ़कैर्द्रोणःकथितःपूर्वसूरिभिः ।
घटःकलशउन्मानोलल्वणोम्र्मणएवच ॥ ४१ ॥
द्रोणपर्यायनामानिकीर्त्तितानिभिषग्वरैः ।
अयञ्चपलसंख्यातःषट्पंचाशच्छतद्वयम् ॥ ४२ ॥
द्रोणाभ्यांशूर्पकुम्भौचचतुःषष्टिशरावकः ।
शूर्पाभ्याञ्चभवेद्द्रोणीबृहद्द्रोणीचसास्मृता ॥ ४३ ॥
द्रोणीचतुष्टयंखारीकथितासूक्ष्मबुद्धिभिः ।
चतुःसहस्रपलिकाषण्णवत्याधिकाचसा ॥ ४४ ॥
तुलापलशतंप्रोक्तंभारःस्याद्विंशतिस्तुला ।
पलानांद्विसहस्राणिभारःपरिमितोबुधैः ॥ ४५ ॥

मागधमानकहा जाताहै । तीसपरमाणुका एक त्रसरेणु, ध्वंसी इसका दूसरा नामहै। छय ध्वंसीकी एक मरीचि, छय मरीचिकी एक सरसों, छय सरसोंका एक जौ, तीन जौकी एक गुंजा या रत्ति, दश रत्तीका एक मासा, इसके दूसरे नाम हेम और धामक है। ४ मासेकी एक शान, इसका दूसरा नाम निकाष्ठकहै (धरणशब्दभी किसी २ग्रंथमें शानका पर्याय दिखाई देताहै)। दो शानका एक द्रंक्षण कोल वटक और कर्षार्द्ध इसके दूसरे नामहै। २ द्रंक्षणका एक कर्ष; सुवर्ण, अक्ष, किञ्चित, बिडालपदक, पिचु, पाणितल, उदुम्बर, तिन्दुक और कवड ग्रह इसके दूसरे नामहैं। दो कर्षका एक पलार्द्ध; शुक्ति और अष्टमिका इसके दूसरे नामहैं । दो शुक्तिका एक पल (८ तोला) मुष्टि प्रकुञ्च, चतुर्थिका

बिल्व और षोड़शिकाम्र इसके दूसरे नामहैं । दो पलका एक प्रसृत, दो प्रसृतका एक कुडव अंजलि अष्टमान और शरावार्द्ध इसके दूसरे नामहैं । दो कुड़वकी एक माणिका, शराव और अष्टपल इसके दूसरे नामहैं । दो माणिका (१६ पल) का एक प्रस्थ; चारप्रस्थ (६४ पल) का एक आढ़क; पात्र, कंस और भाजन इसके दूसरे नामहैं । चार आढ़क या २५६ पलका एकद्रोण, घट, कलस, उन्मान, लल्वन और अर्मण इसके दूसरे नामहैं । दो द्रोण या ६४ शरावका एक सूर्प, इसका दूसरा नाम कुम्भहै । दो सूर्पकी एक द्रोणी, इसका दूसरा नाम बृहत् द्रोणी है. चारद्रोणी या चार हजार छियानवे पलका एक खारी होताहै, ऐसाचतुरवैद्योंने कहाहै । एक शतपलकी एक तुला, वीसतुला या दो हजार पलका एक भार होताहै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

माषकःशानतिन्दूकेपलंकुडवप्रस्थकः ।
राशिर्द्रोणीखारीचेतियथोत्तरंचतुर्गुणाः ॥ ४६ ॥

माषक, शान, तिन्दुक, (कर्ष) पल, कुडव, प्रस्थ, राशि, दोणी और खारी, यह उत्तरोत्तर क्रमानुसार चतुर्गुण हैं अर्थात् माषासे शान चतुर्गुण है, शानसे तिन्दुक चतुर्गुणहै, तिलसे पल चतुर्गुण इत्यादि ॥ ४६ ॥

शुष्कद्रव्येष्विदंमानंद्विगुणञ्चद्रवार्द्रयोः ।
ज्ञातव्यंकुडवादूर्द्ध्वंप्रस्थादिश्रुतिमानतः ॥ ४७ ॥

औषधादिका परिमाण जिस प्रकारसे लिखागया, सो केवल शुष्क द्रव्यके परिमाण सम्बन्धहै । परंतु कुडवके ऊर्ध्वपरि

माणसे द्रव और गीले द्रव्यको परिणामकी अपेक्षा दूना ग्रहण करे[1] ॥ ४७ ॥

शुष्कद्रव्येतुयामात्राचार्द्रस्यद्विगुणाहिसा।
शुष्कस्यगुरुतीक्ष्णत्वात्तस्मादर्द्धंप्रकीर्त्तितम् ॥४८॥

शुष्क द्रव्यके ग्रहण करनेका जैसा परिमाण है, यदि सूखे द्रव्यकी जगह गीला द्रव्य करना हो तो कहे हुए परिमाणसे दूना ग्रहण करे। और जहां पर गीले द्रव्यके ग्रहण करनेकी विधिहै जो उस जगह सूखा द्रव्य ग्रहण करनाहो तो भारी और तीक्ष्णादि द्रव्यके गुण विचारकर सूखे हुए द्रव्यका आधा वजन ग्रहण करे ॥ ४८ ॥

---

१ कुडवमैक्याद्द्वैगुण्यं नेत्यत आह। कुडवादूर्ध्वमिति।

अर्थात् यहांपर यह प्रश्न हो सकताहै कि मूलमें "कुडवादूर्ध्वं" यह लिखाहै वहांपर कुडवसे द्रव और आर्द्र द्रव्यका दूना ग्रहण करना उचितहै या नहीं इसके उत्तरमें कोई २ कहतेहैं कि--

अयमभिसन्धिः कुडवाद्ल्यब्लोपेपंचमीकुडवंव्याप्येत्यर्थः।
केचिदत्रव्याचक्षतेतन्मतेकुडवस्यापिद्वैगुण्यम् ॥

अर्थात् कोई २ कहतेहैं कि कुडव शब्दमें ल्यब्लोपकरके पंचमी विभक्ति मिलीहै अतएव कुडवसे भी दूना ग्रहण करना चाहिये। और कोई कोई इस मतके विरोधीहैं यथाः--कुडवादिति दिग्योगलक्षणां पंचमींये वदन्ति, तन्मते लडवे द्वैगुण्यं नास्तीति।

अर्थात् कोई कोई कहतेहैं कि "कुडव" मे दिग्योगलक्षणा पंचमीके विद्यमान होनेसे कुडवका दूना ग्रहण करना ठीक नहीं है यथाः--

गुञ्जादिमानमारभ्ययावत्स्यात्कुडवास्थितिः।
द्रव्यार्द्रशुष्कद्रव्येषुतुल्यंमानंप्रकीर्त्तितमितिवचनात्।

अस्यार्थः। रक्तिकादिमारभ्य कुडवादर्वाक् तुल्यं मानम्।

अर्थात् ऊपर कहे हुए मतका यह प्रमाणहै, यथाः--रत्तीसे कुडवतक तुल्य परिमाणमें औषधि ग्रहण करनेकी विधि ज्ञानी वैद्य लोगोंकरके कहा गयाहै, यही युक्ति संगतहै। विशेषकरके इस प्रकारकी विधि इसग्रँथमें पहले भी कहीहै।

अस्यापवादमाह ।

वासानिम्बपटोलकेतकिबलाकूष्माण्डकेन्दीवरी ।
वर्षाभूकुटजाश्वगन्धसहितास्ताःपूतिगन्धामृता ॥

निश्चलकरने इसप्रकारसे व्याख्याकीहै। यथाः–

कुडवमारभ्यद्वैगुण्यमेतेनकुडवस्यापि
द्वैगुण्यंनिश्चलकरेणैवव्याख्यातम् ।

निश्चलकर कहताहै कि द्रव और आर्द्र द्रव्यके कुडवकी भी दूना ग्रहण करे। अतएवोक्तम्–

सर्पिःखण्डजलक्षौद्रतैलक्षीरासवादिषु ।
अष्टौपलानिकुडवोनारिकेलेचशस्यते ॥

ऊपर कहे हुए मतके प्रमाणमें निश्चलकरनें आयुर्वेदके आचार्योंका बचन दिखायाहै । यथा-घी खांड (इक्षुजात) जल, शहत, तेल दूध और आसव (मद्यविशेष) आदिके कुडवकी जगह ८ पल अर्थात् १ सेर ग्रहण करे । यह मतभी सब जगह नहीं माना जाता । यथाः–

अनित्यापरिभाषेयंयथादर्शनमुच्यते ।
दन्तीघृतेकुङ्कुमाद्येतैलेसावुपयूज्यते ।
ननारिकेलेखण्डेचनतैलेपलमुच्यते ॥

ऊपर कही हुई विधि केवल दन्तीघृत और कुङ्कुमाद्य तैलमेंही व्यवहारकीजातीहै। इसके सिवाय नारियल, खांड और साधारणतैलके पाकमें चार पलसे एक कुडव ग्रहण करै । (आधसेर) इसका प्रमाण यथाः–

कुडवेकदाचिद्द्वित्वंयथादन्तीघृतेस्मृतमिति ।

अर्थात् कुडवकोभी कहीं २ दूना ग्रहण करना चाहिये । यथादन्ती घृतमें कुडवका दूना होनेसे द्विगुण (८ पल) ग्रहण करना ठीकहै ।

अनेनापिनिःसन्देहोनप्रतिपाद्यतेइति ।
यतोदन्तीघृतमात्रेद्वैगुण्यमस्ति, न सर्वत्र ।
कण्ठोक्त्याःक्वचिदितिपाठात् ॥

परंतु इस प्रमाणसे भी निःसन्देह होकर कुछभी ठीक नहीं किया

मासंनागबलांसहाचरपुरांहिंग्वार्द्रकेनित्यशः ।
ग्राह्यास्तत्क्षणमेवनाद्विगुणितायेचेक्षुजातागणाः ४९
"धनाइतिवापाठः।"

वासक (विसोंटा) नीम, पटोल (परवल) केतकी, खरैं-टी, पेठा, शतावरी सांठ, कुडा, असगंध, पसरन, गिलोय, मांस, गंगेरन, कटसरैया, गुग्गुलु, हींग, अदरख, और गन्ने-से उत्पन्न हुए द्रव्य (खांड, गुड, चिनी और मिश्री आदि) सदा गीलेही, ग्रहण करे । इनका दुगना ग्रहण न करे ॥ ४९ ॥

अन्यच्च ।

गुडूचीकुटजोवासाकूष्माण्डश्चशतावरी ।

जासकता । क्योंकि केवल दन्तीघृतमें कुडवसे दूना ग्रहण करनेंकी विधि दिखाई देतीहै और कहीं नहीं । और " कुडवे कदाचिद्द्वित्वम् " इत्यादिके पाठसे यही समझाजाताहै कि कहीं २ कुड़वसे दूना ग्रहण करना चाहिये ।

अत्रोच्यते ।

कुडवे माणिकायां तुलायां पलमानेचद्वैगुण्यं नास्तीति

इस श्लोकसेभी मालूम होताहै कि कुड़व, माणिक, तुला और पल जहांपर कहा है तहांपर दूना ग्रहण करना ठीक नहीं ।

कुडवेमाणिकायांचतुलामानेतथैवच ।
पलोल्लिखागतेमानेनद्वैगुण्यमिहेष्यतइति ॥

इस वचनसे स्पष्ट जाना जाता है कि कुड़व,माणिक, तुला, और पल जहां २ पर लिखा है, तहांपर दूना ग्रहण न करे ॥

अतएवकुडवस्यनद्वैगुण्यंकिन्तुनिश्चलकर
व्याख्या–दन्तीघृतएव, नान्यत्रेतिसंक्षेपः ।

इस कारण सिद्धान्त यह हुआ कि कुड़वसे दूना ग्रहण करना किसी मतमें ठीक नहीं । निश्चल करनें जो व्याख्याकी है सो केवल दन्तीघृतके लिये, और किसी औषधिके सम्बन्धमें नहीं है ।

अश्वगन्धासहचरीशतपुष्पाप्रसारणी ॥ ५० ॥
प्रयोक्तव्याःसदैवार्द्राद्विगुणान्नचकारयेत् ।
शार्ङ्गधरमतमेतत् ॥

गिलोय, कुडा, बिसोंटा, पेठा, शतमूली, असगन्ध, कटसरैया, सोया, पसरन यह सब द्रव्य नये (ताजे) और गीले ही औषधिमें प्रयोगकरे । इनको दूना ग्रहणकरना ठीक नहीं । शार्ङ्गधरका यह मतहै ॥ ५० ॥

अन्यच्च ।

वासाकुटजकूष्माण्डशतपुष्पासहामृता ।
प्रसारण्यऽश्वगन्धाचनागाख्यातिबलाबलाः॥ ५१ ॥
नित्यमार्द्राःप्रयोक्तव्यानतासांद्विगुणोभवेत् ।
हस्तीकर्णपलाशवात्थालकगोरक्षतण्डुलाश्चैतत्५२

दूसरा प्रकार कहा जाताहै, तथा बिसोंटा, कुडा, पेठा, सोया, गिलोय, पसरन, असगन्ध, गंगेरन, कंघी, हस्तीकर्ण पलाश, खरेंटी, सहदेई, चवलाई और गोरखमुण्डी इन सब द्रव्योंको सदा गीला ग्रहण करे। इनको दूना ग्रहण करनेका नियम नहीं है ॥५१ ॥५२॥

अथद्रव्याणामुपयुक्तानुपयुक्तमाह ।
शुष्कंनवीनंद्रव्यंचयोज्यंसकलकर्म्मसु ।
आर्द्रञ्चद्विगुणंविद्यादेषसर्वत्रानिश्चयः ॥ ५३ ॥

योग्य और अयोग्य द्रव्यके विषयमें कहा जाताहै । यथाः-नया द्रव्य सुखाकर सब प्रकारकी औषधिमें प्रयोगकरे । यदि उसका गीला प्रयोग करना बहुतही आवश्यकहो तो योग्य परिमाणकी बनिस्वत दूना प्रयोग करै । इसमतको सब मानतेहैं ॥ ५३ ॥

अन्यच्च ।

द्रव्याण्यभिनवान्येवप्रशस्तानिक्रियाविधौ ।
ऋतेघृतगुड़क्षौद्रधान्यकृष्णाविडङ्गकम् ॥ ५४ ॥

दूसरे मतमें कहाहै कि घी, गुड, सहद, धनियां, पीपल और वायविडङ्ग इनके सिवाय और समस्त औषधिही चिकित्सा कार्यमें नवीन श्रेष्ठहैं घृतादि कई द्रव्य जितने पुराने हों उतनेही अधिक फलदायकहैं ॥ ५४ ॥

प्रसङ्गात्स्नेहादेर्गुणागुणमाह ।

स्नेहसिद्धोगुडादिश्चगुणहीनोऽब्दतोभवेत् ।
स्नेहाद्याःपूर्णवीर्याःस्युराचतुर्म्मासतःपरम् ॥ ५५ ॥
अब्दादूर्ध्वंघृतंपक्वंहीनवीर्यंतुतद्भवेत् ।
तैलेविपर्ययंविद्यात्पक्वेऽपक्वेविशेषतः ॥ ५६ ॥
"तैलमत्रतिलभवंनसर्षपादिस्नेहसामान्यपरम् ।"

स्नेहादिके (घृत तैलादि) गुणागुणका वर्णन कियाजाताहै । स्नेहादिमें पके हुऐ गुड़ादि एक वर्ष पीछे वीर्यहीन होजातेहैं । स्नेहादि (पकाहुआ तेल) चार मासके पीछे पूर्ण वीर्यको प्राप्त होताहै । पकाहुआ घी एक वर्षके पीछे वीर्यरहित हो जाताहै । पका, वेपका दोनों प्रकारका तेलही जितना पुराना होगा, उतनाहीं अधिकफलदायक होगा ऐसा नियम केवल तिलके लिये है, सरसों आदिके साधारण तेलमें यह नियम उचितनहीं ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

अन्यच्च ।

गुणहीनंभवेद्वर्षादूर्ध्वंतद्रूपमौषधम् ।
मासद्वयात्तथाचूर्णंहीनवीर्यत्वमाप्नुयात् ॥ ५७ ॥

हीनत्वंगुटिकालेहौलभेतेवत्सरात्परम् ।
हीनाः स्युर्घृततैलाद्याश्चतुर्मासाधिकास्तथा[1] ॥५८॥
औषध्योलघुपाकाःस्युर्नवीर्यंवत्सरात्परम् ॥
पुराणाःस्युर्गुणैर्युक्ता आसवं धातवोरसाः ॥ ५९ ॥

स्नेहादिका वर्णन दूसरी प्रकारसे किया जाताहै । एक वर्षके पीछे साधारणतः प्रायः किसी औषधिमेंही वीर्य हीन रहता । चूर्णकी हुई औषधि दो मासके पीछे वीर्यहीन होजातीहै । गोलियें, लड्डू और अवलेह एक वर्षके पीछे वीर्यरहित होजातीहैं । चार मासके पीछे घी और तैलादि वीर्यरहित होतेहैं । पाकमें हलकी समस्त औषधियें भी एक वर्षके पीछे वीर्यरहित हो जातीहैं । आसव (मद्यविशेष) धातु द्रव्यादि और पारा यह जितने पुराने हों उतनेहीं अधिक गुणदायकहैं ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

शार्ङ्गधरेणैवोक्तम् ।

व्याधेरयुक्तंयद्द्रव्यंगणोक्तमपितत्त्यजेत् ।
अनुक्तमपियुक्तंयद्योजयेत्तत्रतद्बुधः ॥ ६० ॥

---

१ हीनाःस्युर्घृततैलाद्याइतितैलमत्रकटुतैलकम् ।
तन्निष्पादितदशमूलतैलादिचज्ञेयंनान्यत् ॥
इस श्लोककी व्याख्यासे यह निश्चय किया जाताहै कि ऊपरके श्लोकका तात्पर्य कि चार मासके पीछे घृत तैलादि हीनवीर्य होजाते हैं—केवल कटुतैल (सरसोंका तेल) से उत्पन्नहुए (दशमूलतैलादि) पके तेलके सम्बन्धमें जानना ।
अब्दादूर्ध्वंघृतंपक्वंहीनवीर्यत्वमाप्नुयात् ।
तैलेविपर्ययंविद्यात्पक्वेऽपक्वेविशेषतः॥ इतिवचनात् ॥
ऊपरका मत ठीक नहींहै । एकवर्षके पीछे घृत हीनवीर्य होजाताहै, तेल इस्से विपरीतहै । अर्थात् तेल (सरसोंके पकेहुए तेलके सिवाय) एकवर्षके पीछे अधिक गुणकारक होताहै ॥

रोगके लिये जो द्रव्य अयोग्यहै वह द्रव्य यदि गणमें कहाहो तो उसको ग्रहण न करे। और रोगके लिये द्रव्य योग्य है, वह यदि गणमें न लिखाहो, तो बुद्धिमानको विचारके साथ उसका प्रयोगकरना चाहिये ॥ ६० ॥

अथ प्रशस्तदेशजद्रव्यमाह।

आग्नेयाविन्ध्यशैलाद्याःसौम्यो हिमगिरिर्म्मतः।
ततस्तान्यौषधानिस्युःप्रशस्तानिक्रियाविधौ ६१॥

विन्ध्यादि पर्वत आग्नेय गुणवालेहैं और हिमालयादि पर्वत सोमगुणवाले हैं। इन दोनों स्थानोंमें उपजी हुई औषधियोंमें भी तैसेही गुणहोंगे। अत एव आग्नेय गुण बढ़ानेंके लिये विन्ध्यादि पर्वतकी और सोमगुण बढ़ानेंके लिये हिमालयादि पर्वतकी उत्पन्न औषधिही चिकित्सामें श्रेष्ठहै ॥ ६१ ॥

अन्येष्वपिप्ररोहन्तिवनेषूपवनेषुच।
गृह्णीयात्तान्यपिभिषग्वनेशैलेविशेषतः॥ ६२॥

इन पर्वतोंके सिवाय वन उपवनके और पवित्रस्थानोंमें जो औषधादि उत्पन्न होतीहैं, तिनकोभी चिकित्सक ग्रहणकरे। परन्तु पर्वती औषिधि सबसे श्रेष्ठहै ॥ ६२ ॥

अन्येप्याहुः।

धन्वसाधारणेवापिगृह्णीयादुत्तराश्रितम्।
पूर्वाश्रितंवामतिमानौषधंतद्विचक्षणः॥ ६३ ॥

धन्वदेश (मरुभूमि और जांगलदेश) और साधारण देशोंमें जो औषधादि उत्पन्नहोतीहै, चतुर वैद्यको उचितहै, कि उत्तर दिशा या पूर्वदिशासे तिनको ग्रहणकरे ॥ ६३ ॥

अन्यच्च ।

धन्वसाधारणेदेशेमुदावृत्तरतःशचौ ।
अवैकृतमनाक्रान्तंसवीर्यंग्राह्यमौषधम्[१] ॥ ६४ ॥

धन्वदेश और साधारणदेशोंके पवित्र स्थानोंमें जो औषधियां उत्पन्नहोतीहैं सो अविकृत (स्वाभाविक) और कीडे आदिकी खाई हुई न हो, ऐसा देखकर, वीर्यवाली औषधि ग्रहण करै ॥ ६४ ॥

अत्र निषेधमाह ।

देवतालयवल्मीककूपराख्याःश्मशानजाः ।
अकालतरुमूलोत्थान्यूनाधिकविचिन्तना ॥
जलाग्निक्रिमिसंक्षुण्णाओषध्यस्तुनसिद्धिदाः ॥ ६५

।जिन स्थानोंसे औषधि ग्रहण करनेका निषेध है सो कहा जाताहै यथाः-देवालय और वंमईके ऊपर जमीहुई, कूएमें जमी हुई मार्गके निकट जमीहुई, मसानमें उत्पन्न हुई और वृक्षकी जडमें जमीहुई औषधियोंको ग्रहण न करै।अकालमें उत्पन्नहुए वृक्ष (उत्पन्न होनेंके समयको छोडकर और समय उत्पन्न हो) अपने आकारसे कहीं छोटे वृक्ष, बडे अथवा बहुत समयमें उत्पन्न हुई और जल अग्नि व कीटादि करके दूसरी अवस्थाको प्राप्त हुई औषधियोंको चतुर वैद्य ग्रहण न करे क्योंकि यह फलदायक नहीं होतीं ॥ ६५ ॥

अन्यच्च ।

वल्मीककुत्सितानूपश्मशानोषरमार्गजाः ।
जन्तुवह्निहिमव्याप्तानौषध्यःकार्यसाधिकाः ॥६६॥

---

१ "धन्वः देशविशेषः" मरुभूमिजाङ्गलयोः संसृष्टलक्षणोदेश इति । अर्थात् धन्वदेश शब्दसे मरुभूमि और जांगलदेश यह दोनोंहीं समझेजातेहैं ।

वंमईके ऊपर, कुत्सितस्थानमें, जलजदेशमें, श्मशानमें खारीस्थानमें या मार्गके निकट जो औषधियां उत्पन्न होती हैं, और जो कीडे, आग और शिशिर (शीत) से सताई गई हैं सो औषधियें फलदायक नहीं होतीं । इस कारण ऐसे स्थानोंकी औषधियोंका ग्रहण करना ठीक नहीं ॥ ६५ ॥

अथभेषजोद्धारणमंत्रभूतापसारणश्च ।

ॐनिवसन्तिहिभूतानियान्यस्मिन्कानिचद्द्रुमे ।
अपक्रामन्त्वतस्तानिप्रजार्थंपाट्यतेद्रुमः ॥ ६७ ॥
ॐवेतालाश्चपिशाचाश्चराक्षसाश्चसरीसृपाः ।
येभूतास्तेऽपसर्पन्तुवृक्षादस्माच्छिवाज्ञया ॥६८॥

औषधि उखाडनेके पहले ऊपर कहाहुआ "ओंनिवसन्तिहि" इत्यादि मंत्र पढै । उस मंत्रका अर्थः–इस वृक्ष पर वेताल, पिशाच, राक्षस, सर्पादि जिस प्रकारके प्राणी रहतेहैं वह शिवकी आज्ञाके अनुसार इस वृक्षसे, अलग हों क्योंकि यह वृक्ष जीवोंका रोग दूर करनेंके लिये उखाडताहूं॥ ६७॥ ६८॥

अथोद्धारणमंत्र ।

ॐयेनत्वांखनतेब्रह्मायेनेंद्रोयेनकेशवः ।
तेनाहंत्वांखनिष्यामिमंत्रपूतेनपाणिना ॥ ६९ ॥

औषधि तोडनेके समय ऊपर कहाहुआ मंत्र पढै इस मंत्रका अर्थ यह है किः–जिस निमित्त तुमको ब्रह्मा, इन्द्र और केशवादिनें जो पवित्र हस्तसे मंत्रपढकर उखाडाहै, मैं भी उसी हाथसे तुमको मंत्र पढकर उखाडताहूं ॥ ६९ ॥

भूतादिमुक्तयेभ्यर्च्यसायंप्रातश्चसम्मुखे ।
श्राद्धैरुपोषितैग्राह्यंभेषजंकर्मकृद्भवेत् ॥ ७० ॥

जो वैद्य उपवासी रहकर सन्ध्या अथवा प्रातःकालमें शिवकी पूजाकरके पितृगणोंका पार्वणादि श्राद्धकार्य करनेंके पीछे औषधि लावै तो वह औषधविशेष फलदायक होती है ॥ ७० ॥

अथौषधद्रव्याङ्गग्रहणमाह ।

सारःस्यात्खदिरादीनांनिम्बादीनांचवल्कलम्
फलन्तुदाडिमादीनांपटोलादेश्छदस्तथा ॥ ७१ ॥

खयरादिका (लालचन्दन, श्वेतचंदन, देवदारू आदिका) सार, नीम आदिकी (बेल,श्योनाक, गम्भारी आदिकी) छाल दाडमादिके फल, और परवल आदिके पत्र ग्रहण करने चाहिये ॥ ७१ ॥

शार्ङ्गधरस्त्वाह ।

न्यग्रोधादेस्त्वचोग्राह्याःसारःस्याद्वीजकादितः।
तालीसादेश्चपत्राणिफलंस्यात्त्रिफलादितः॥ ७२ ॥
"न्यग्रोधः वटः"

वट, पीपल आदि वृक्षोंकी छाल, विजय सारादि वृक्षका (खैर, चंदनादिक) सार,ताडादिके पत्र और त्रिफला आदिके फल ग्रहण करे। शार्ङ्गधरका यह मत है ॥ ७२ ॥

अन्यच्च ।

महान्तियानिमूलानिकाष्ठगर्भाणियानिच ।
तेषान्तुवल्कलंग्राह्यंह्रस्वमूलानिकृत्स्नशः ॥७३॥

जिन वृक्षोंकी मूल, स्थूल, (मोटी) है और जिनके भीतर सारवान काष्ठ है तिनका बक्कल ग्रहण करे । छोटे वृक्षकी जडके भीतर सार नहीं हैं वह सबही, अर्थात् मूल, पत्र और पौदे सहित ग्रहण करले ॥ ७३ ॥

अन्यञ्च ।

अतिस्थूलजटायाश्चतासांग्राह्यास्त्वचोध्रुवम् ।
गृह्णीयात्सूक्ष्ममूलानिसकलान्यपिबुद्धिमान् ॥७४॥

जो बडे वृक्ष बडी जडवाले हैं, तिनकी छाल और जो वृक्ष छोटे हैं तिनको समूल ग्रहण करले ॥ ७४ ॥

निर्देशः[1]श्रूयतेतन्त्रेद्रव्याणांयत्रयादृशः ।
तादृशःसंविधातव्यःशास्त्राभावेप्रसिद्धतः ॥ ७५ ॥

औषधि ग्रहण करनेके विषयमें शास्त्रनें जिस स्थानमें जैसा अंग ग्रहण करनेकी विधि लिखी है, वहांपर उसको ही ग्रहण करे ॥ ७५ ॥

व्याधिप्रशमनेपूर्वंज्ञापितानिपृथग्जने[2] ।
विस्फारितान्यौषधानिपश्चाद्राजानियोजयेत्[3] ॥७६॥

रोगको दूर करनेवाली औषधि नवीन तैयारहो, तो पहला उसका व्यवहार साधारण लोगोंको कराकर परीक्षासे गुण औगुण जान तिसके उपरान्त राजाओंको व्यवहार करावे ॥७६॥

---

१ अस्यार्थः।यत्र यत्र द्रव्येषु अङ्गानामवयवानां यादृशो निर्देशः श्रूयते तादृश एव ग्राह्यः । यथा अमृतादिपाचने– " अमृताविषपटोलनिम्बपत्रमिति" अत्र पत्रमेव ग्राह्यम्।न वल्कलम्।पत्रस्य कण्ठोक्तत्वात् । अंगसामान्योक्तौ मूलस्य वल्कलेनैव व्यवहार इति गुरवः । अंगेप्यनुक्ते विहितन्तु मूलमिति वचनात् ।

अर्थात् शास्त्रमें जिसस्थानपर जैसी विधि कहीहै, वहांपर वही ग्रहणकरना । पहले कहे हुए वचनके अनुसार समस्त कार्य सिद्ध नहीं होता । जैसे अमृतादि पाचनमें नीमके पत्ते लिखेहैं, यहांपर निश्चय छालको ग्रहण नकरके पत्रही ग्रहण करे । औषधि ग्रहण करनेमें यदि किसी स्थानमें अंग (छालमूलादि) नकहे हो तिसस्थानमें गुरु उपदेशके अनुसार कार्य करे ॥

२ " पृथग्जने " इति जनान्तरे । ३ " विस्फारितानि " विशेषेण स्फूर्त्तानि ।

तद्यथा-

गोपालतापसव्याधमालाकारवनेचरान् ।
पृष्ट्वानामानिजानीयाद्भेषजानांचशास्त्रतः ॥ ७७ ॥

औषधिका नाम नजाना हुआहो तो गोपाल, तपस्वी, व्याध (शिकारी), माली, कुली लोगोंसे पूछ कर औषधिका नाम जाने ॥ ७७ ॥

विषयभेदेऋतुद्रव्यग्रहणम् ।

शरद्यखिलकर्म्मार्थंग्राह्यंसरसमौषधम् ।
विरेकवमनार्थंचवसन्तान्तेसमाहरेत् ॥ ७८ ॥

सब प्रकारकी औषधिके लिये सरस औषध शरत्कालमें, और वमन, विरेचनके लिये ग्रीष्मकालमें ग्रहण करे ॥ ७८ ॥

अथ ऋतुभेदे द्रव्याङ्गग्रहणमाह ।

मूलानिशिशिरेग्रीष्मेपत्रंवर्षावसन्तयोः ।
त्वक्कन्दौशरदिक्षीरंयथर्तुकुसुमंफलम् ॥
हेमन्तेसारमौषध्यागृह्णीयात्कुशलोभिषक् ॥ ७९ ॥

अस्यार्थः ।

यथेति यास्मिन् ऋतौ यद्यत् पुष्पं फलञ्च भवति तस्मिन्नेव तत्तद्ग्राह्यमित्यर्थः ॥

चतुर वैद्यको चाहिये कि शीतकालमें मूल, ग्रीष्मकालमें पत्र, वर्षाकालमें बक्कल, वसन्तकालमें कन्द (मूलविशेष) शरत्कालमें निर्यास (गोंद) और हेमन्त कालमें सार ग्रहण करे । जिस वृक्षका फल फूल जिस ऋतुमें उत्पन्न होवे, उसको उसी ऋतुमें ग्रहणकरे[1] ॥ ७९ ॥

---

१ मूल और कन्दमें भेद यह है कि जिस वृक्षमें एक मूल होतीहै तिसको मूल कहतेहैं; यथा–रासना भारंगी आदि । और जिन वृक्षोंमें

अथ सामान्योक्तौद्रव्यग्रहणमाह।

पात्रोक्तौचापिमृत्पात्रमुत्पलेनीलमुत्पलम् ।
शकृद्रसेगोमयरसंचन्दनेरक्तचन्दनम् ॥ ८० ॥
सिद्धार्थःसर्षपेग्राह्योलवणेसैन्धवंमतम् ।
मूत्रेगोमूत्रमादेयंविशेषोयत्रनेरितः ॥ ८१ ॥
पयःसर्पिःप्रयोगेषुगव्यमेवप्रशस्यते ।
स्त्रियश्चतुष्पदेग्राह्याःपुमांसोविहगेषुच ॥ ८२ ॥
जाङ्गलानांवयस्थानांचर्मरोमनखादिकम् ।
हित्वाग्राह्यंपूतमासंसास्थिकंखण्डशःकृतम् ॥८३॥
पक्तव्यमाजमांसंचविधिनाघृततैलयोः ।
हित्वास्त्रीपुरुषंचापिक्लीबंतत्रापिदापयेत् ॥ ८४ ॥
बलिनश्चवयस्थश्चसुवीर्यश्चसुदेहिनम् ॥
नवृद्धश्चनबालश्चअवीर्यस्त्रावशोणितम् ॥ ८५ ॥

भलीभांतिसे पात्र नकहागयाहो तो मिट्टीका बनाहुआ पात्र ग्रहणकरे। उत्पल शब्दसे नीलोत्पल ले जहांपर शकृत्रस (मलकारस) वहांपर गोबरका रस, और जहांपर चन्दन लिखाहै[1] वहांपर लालचन्दन ग्रहणकरे। सर्षप शब्दसे सफेद सरसों, लवण शब्दसे सेंधानोन, जहां पर मूत्र लिखाहो वहांपर गोमूत्र (सप्रसवा स्त्रीजातिका) ग्रहणकरे। दूध और घी

बहुत जड़े होतीहैं अथवा जड़कास्थान गोलाकार और बड़ा होताहै तिसको कन्द कहते हैं, जैसे चिता शतावरी आदि बहुत जड़वाली और जिमीकंद व विदारीकंद आदि गोलाकार युक्त बड़े होतेहैं।

१ परन्तु चूर्ण, लेह, आसव और स्नेह बनानाहो तो तिसके स्थानमें श्वेत चन्दन ग्रहण करना चाहिये। काढ़े और लेपके विधानमें लालचंन्दनको ग्रहणकरे यथाः—

लिखाहै तो वहांपर गायका दूध और गायका घी ग्रहणकरे । चौपाये पशुओंमें मादा, और पक्षीजातिमें नरको ग्रहणकरे । जंगली पशुओंमें मध्यम उमरवालेंको ग्रहणकरे । और चर्म रोम व नखादि व्यवहार न करनें योग्य द्रव्यादिको छोड़कर हड्डीके सहित मांसके टुकडे २ करले । घृत और तेलके पाक सम्बंधमें विधिपूर्वक छागका मांस ग्रहण करनाहो तो नरव मादा जातिको छोडकर बलवान, मध्यम उमरवाला, वीर्यवान और श्रेष्ठशरीरवाला क्लीब (नपुंसक-खस्सी) जाति ग्रहणकरे। वृद्ध, कम उमरका , वीर्यहीन. यारक्तस्रावका, या जिसमें किसीप्रकारका दोषहो तिसको ग्रहण नेकरे ॥ ८५ ॥

काशीराजमतेनैवछागमेवनपुंसकम् ।
अभावादप्रतिज्ञाद्वावृद्धवैद्योपदेशतः ॥
वन्ध्याछागीविपक्तव्यानतुशास्त्रमतंचरेत् ॥ ८६ ॥

चूर्णलेहासवस्नेहाःसाध्याधवलचन्दनैः ।
कषायलेपयोःप्रायोयुज्यतेरक्तचन्दनम् ॥
भावप्रकाशे ॥

१ एतद्धेतुगर्भं विशेषणम् । असन्धिस्तु छान्दसः । अथवा न वीर्यम् अवीर्यम् अल्पार्थेनञ् तेनाल्पशुक्रम् । अतएव काशीराजाभिप्रायेण नपुंसकस्य विधिना सूचितमेव, शरीरारम्भकत्वादल्पवीर्यत्वं वीर्यमस्त्येव इत्यर्थः । अतः स्रावशोणितायाश्छाग्यास्त्वनुपयोगित्वम् । अर्थादस्रावशोणिताया ग्राह्या इत्यर्थः ॥ स्त्री प्रकृत्या वन्ध्या छाग्या अस्रावशोणितात्वमस्त्येव तस्माद्वन्ध्या छाग्यपि योज्या इति नपुंसकभावादनुशासनात् ॥

२ अभावादिति नपुंसकस्य अलाभात् । अथवा नपुंसकस्य वीर्याभावात् वीर्यमस्ति न वेति काकदन्तवत् । अप्रतिज्ञाद्वाशास्त्रमिति शासनम् आज्ञा । काशीराजमतेनैवेत्यादिरूपेण ॥ केचित्तु कृत्रिमनपुंसकमपि ददति । तदसत्तत्तु प्रकृतिश्च पुरुषएव । ननु वन्ध्याया नपुंसकस्य च छागस्य अपत्यजनकत्वं नास्ति, तत्कथमपत्यकामिनः प्रवर्त्तन्ते छा-

काशिराजका मतहै कि छाग जातिका नपुंसक ग्रहणकरना चाहिये। नपुंसक छाग नहो अथवा प्रतीक्षा (विलम्ब) करनेंका समय नहो तो वृद्ध वैद्यके उपदेशके अनुसार वांझझागी करके पाकका कार्य पूराकरे । परन्तु आयुर्वेद शास्त्र इससे सम्मत नहींहै। नहोतमेंही ऐसा करना चाहिये ॥ ८६ ॥

शृगालबर्हिणोःपाकेपुमांसंतत्रदापयेत् ।
मयूरीजम्बूकीछागीवीर्यहीनास्वभावतः ॥ ८७ ॥

शृगाल और मोरके मांससे घृत तैलादि पाक करनाहो तो नरजातिका मांस ग्रहण करना चाहिये। क्यों कि मोरनी, शृगाली, और भेड यह स्वभावसेही वीर्यहीन होतीहै ॥ ८७ ॥

स्त्रीणांमूत्रंगवांतीक्ष्णंनतुपुंसांविधीयते ।
पित्तात्मिकाःस्त्रीयोयस्मात्सौम्यास्तुपुरुषामताः ॥
क्षीरमूत्रपुरीषाणिजीर्णाहारेतुसंहरेत् ॥ ८८ ॥

गायका गोमूत्र ग्रहण करना चाहिये । परन्तु अनथानी गायका मूत्र ग्रहण करना ठीक नहीं। बैलका मूत्र ग्रहण नकरे क्योंकि स्त्रीजातिका मूत्र आग्नेयत्वके हेतु करके तीक्ष्ण और नरजातिका मूत्र सोमगुणयुक्त होताहै। दूध, मूत्र और पुरीष (मल) आहार पचनेंके अन्तमें ग्रहणकरे ॥ ८८ ॥

अथानुक्तद्रव्यग्रहणम् ।

कालेनुक्तेप्रभातंस्यादङ्गेनुक्तेजटाभवेत् ॥ ८९ ॥

गलादिघृतादिषु कदाचित् क्रियासिद्धेरभावः स्यादतश्चिन्त्यम् ॥ अर्थात् काशीराजका ऊपर कहा हुआ मत केवल अभावके पक्षमें ही है। कोई कोई कृत्रिम नपुंसकके द्वारा घृततैलादिका पाक बनाया करतेहैं, परन्तु वह युक्तिसिद्ध नहीं है । क्योंकि वह प्रकृतिसे पुरुषजातीयहै ॥

भागेऽनुक्तेतुसाम्यंस्यात्पात्रेऽनुक्तेतुमृन्मयम् ॥
द्रवेऽनुक्तेजलंविद्यात्सर्वत्रैषविनिश्चयः ॥ ९० ॥

काल न कहाहो तो प्रातःकाल,औषधिका अंग न कहा हो तो मूल, भाग न कहाहो तो समभाग, पात्र न कहाहो तो मिट्टीका बनाहुआ पात्र और द्रव द्रव्य न बतलायाहो तो तिसके स्थानमें सब जगह जल ग्रहणकरे ॥ ८९ ॥ ९० ॥

अथाभावेद्रव्यग्रहणम् ।

मधुयत्रनविद्येततत्रजीर्णोगुडोमतः ।
पुरातनगुडाभावेरौद्रेयामचतुष्टयम् ॥ ९१ ॥
संशुष्यनूतनंग्राह्यंपुरातनगुडैर्विना ।
क्षीराभावेभवेन्मौद्गोरसोमासूरएववा ॥ ९२ ॥

मधुके अभावमें पुराना गुड ग्रहणकरे । पुराना गुड नहो तो नया गुड चार प्रहर तक धूपमें सुखाकर प्रयोग करे । दूध न होतो मूंग अथवा मसूरके जूसको ग्रहण करे ॥ ९१ ॥९२॥

सिताभावेचखण्डःस्याच्छाल्यभावेचषष्टिकः ।
असम्भवेचद्राक्षायागम्भारीफलमिष्यते ॥ ९३ ॥
नभवेद्दाडिमोयत्रवृक्षाम्लंतत्रदापयेत् ।
सौराष्ट्रमृदभावेचग्राह्यापङ्कस्यपर्प्पटी ॥ ९४ ॥
नतंतगरमूलंस्यादभावेशीहलीजटा ।
प्रयोगेयत्रलौहःस्यादभावेतन्मलंविदुः ॥ ९५ ॥
सर्षपःशुक्लवर्णोयःसहिसिद्धार्थउच्यते ।
तत्रासिद्धार्थकाभावे सामान्यःसर्षपोमतः ॥ ९६ ॥

बुरा न होतो खांड,शालि धान्य नहो तो सट्ठी धान्य,दाखके

अभावमें गम्भारी फल, दाडिमके अभावमें विषामिल, सौराष्ट्रकी मिट्टीके अभावमें पंकपपडी ग्रहण करे, तगरकी जडके अभावमें शीहलीजटा और लोहके अभावमें लौहमल ग्रहण करे। श्वेत सरसोंको सिद्धार्थ करते हैं, इस सिद्धार्थका अभावहो तो इसके बदलेमें साधारण सरसों ग्रहण करे ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

चविकागजपिप्पल्योःपिप्पलीमूलमेवच।
अभावेपिप्[1]पलीमूलंहस्तिपिप्पलिचव्ययोः ॥९७॥
अभावेपृश्निपर्ण्याश्चसिंहपुच्छी[2]विधीयते।
नित्यंमुं[3]ञ्जतिकाभावेतालमं[4]स्तकमिष्यते ॥ ९८ ॥

चव और गजपपिलके अभावमें पीपलामूल ग्रहण करे पीपलामूलके अभावमें गजपीपल, पिठवनके अभावमें शालपर्णी (सरिवन) और मुंजतिका (मूंज) के अभावमें तालमस्तक ग्रहण करे ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

कङ्कुमस्याप्यभावेऽपिनिशाग्राह्याभिषग्वरैः।
मुक्ताभावेशङ्खचूर्णंवज्राभावेवराटिका ॥ ९९ ॥
कर्कटश्रृङ्गकाभावेमायाम्बुचेष्यतेबुधैः[5]।
धान्यकाभावतोदद्याच्छतपुष्पांभिषग्वरः॥१००॥
वाराहीकन्दकाभावेचर्म्मकारालुकोमतः।
मूर्वाभावेत्वचोग्राह्याजिंगिन्याब्रुवतेसदा॥ १०१ ॥

---

(१) पाठान्तरमेतत्, न पुनरुक्तदोषः।
(२) " सिंहपुच्छी " शालपर्णी ।
(३) मञ्जुफलमिति केचित्।
(४) तालसदृशवृक्षः स्यात्, सच देशान्तरे ख्यातः ॥
(५) कर्कटश्राङ्गिकाभावे मायाम्बुबीजमिष्यते इतिपाठान्तरम्।

कुङ्कुमके अभावमें कच्चीहलदी, मुक्ताके अभावमें शंखचूर्ण, हीरेके अभावमें वैक्रान्त (मणिविशेष चुम्बक) कांकडाशृंगीके अभावमें मायाम्बुबीज (माजूफलकेबीज) धानियेके अभावमें सोया, वाराहीकन्दके अभावमें चमारआलु, और मुरहरीके अभावमें भिङ्गीनी वृक्षका वक्कल ग्रहण करे ॥ ९९ ॥ १०० ॥ १०१ ॥

अभावात्पौष्करेमूलेकुष्टंसर्वत्रगृह्यते ।
सामुद्रंसैन्धवाभावेविडम्बागृह्यतेबुधैः ॥ १०२ ॥
कुस्तुम्बुरुनविद्येतयत्रतत्रचधान्यकम् ।
पुष्पाभावेफलंचामंविड्भेदेबिल्वतःफलम्॥ १०३॥
यष्ट्याह्वाभावतोविद्याच्चव्यंतस्याप्यभावतः ।
मूलंमौषलिकंदेयमभावेकुटजस्यच ॥ १०४ ॥
रास्नाभावेचवन्दाकंजीराभावेचधान्यकम् ।
तुम्बुरूणामभावेऽपिशालिधान्यंप्रकीर्त्तितम्॥१०५

पुष्करमूलके अभावमें सब जगह कूट ग्रहणकरे, सेंधानोनके अभावमें समन्दरनोन, कुस्तुम्बरु (गीलाधनियां कच्चा धनियां)के अभावमें धनिया, पुष्पके अभावमें कच्चाफल और मलका भेद होनेपर बिल्वफल ग्रहण करे । मूलहठीके अभावमें चव, कुडाके अभावमें मुसलीकी जड, रास्नाके अभावमें वन्दा (वृक्षके ऊपर वृक्ष) जीराके अभावमें धनिया और तुम्बरुके अभावमें शालिधान्य ग्रहण करे ॥ १०२॥१०३॥१०४॥१०५॥

भल्लातकासहत्वेतुरक्तचन्दनमिष्यते ।
भल्लाताभावताश्चित्रंनलश्चेक्षोरभावतः ।
मद्याभावेचाशिण्डाकीशुत्त्यभावेचकाञ्जिकम्१०॥

भिलावेके अभावमें चित्रक, या लालचन्दन, गन्नेके अभा-

वमे नल, मद्यके अभावमें शिण्डाकी (सन्धान-भेद) और तेज-शरावके अभावमें कांजी ग्रहण करे ॥ १०६ ॥

चित्रकाभावतोदन्तीक्षारःशिखरिजोऽथवा[1] ॥
अभावेधन्वयासस्यप्रक्षेप्यातुदुरालभा ॥ १०७ ॥
अहिंस्रायाअभावेतुमानकन्दःप्रकीर्त्तितः ॥
लक्षणायाअभावेतुनीलकण्ठशिखामता[2] ॥१०८॥

चितेके अभावमें दन्तीमूल अथवा चिरचिटेका क्षार, जवासेके अभावमें दुरालभा(जबासा), अहिंस्रा (कण्टकपाली) के अभावमें मानकन्द (मालकन्द), श्वेतकटेरीके अभावमें मयूरपुच्छ ग्रहणकरे ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

बकुलाभावतोदेयंकह्लारोत्पलपंकजम् ।
नीलोत्पलस्याभावेतुकुमुदंदेयमिष्यते ॥ १०९ ॥
जातीपुष्पंनयत्रास्तिलवङ्गंतत्रदीयते ।
अर्कपर्णादिपयसोह्यभावेतद्रसोमतः ॥ ११० ॥
पौष्कराभावतःकुष्टंतथालाङ्गल्यभावतः ।
स्थौणेयकस्याभावेतुभिषग्भिर्दीयतेगदः ॥ १११॥

बकुलके अभावमें कल्हार, उत्पल और पद्म ग्रहण करे । नीलोत्पलके अभावमें बबूला, चमेली फूलके अभावमें लोंग, आगादिका दूध नहो तो तिनके पत्रोंका रस ग्रहण करले । पुष्करमूलके अभावमें कूट, वाकुचीके अभावमें ककरोंदाका फल, लाङ्गली (कारिहारीकाविष) और गंठीलेके अभावमेंभी वैद्यलोग कूटका व्यवहार करा करते हैं ॥ १०९॥११०॥१११॥

---

(१) " शिखरी " अपामार्गः । चिरचिटा ।
(२) नीलकंठ शिखा 'मोरकी पूंछ ' ।

कुंकुमाभावतोदद्यात्कुसुम्भकुसुमंनवम्। (द्विपाठः)
श्रीखण्डचन्दनाभावे कर्पूरंदेयमिष्यते ॥ ११२ ॥
अभावेत्वेतयोर्वैद्यःप्रक्षिपेद्रक्तचन्दनम् ।
रक्तचन्दनकाभावेनवोशीरंविदुर्बुधाः ॥ ११३ ॥
मुस्ताचातिविषाभावेशिवाभावेशिवामता ।
अभावेनागपुष्पस्यपद्मकेशरमिष्यते ॥ ११४ ॥
मेदाजीवककाकोलीऋद्धिद्वन्देऽपिवासति ।
वरीविदार्य्यश्वगंधावाराहीच क्रमात्क्षिपेत् (११५)

कुंकुमके अभावमें कसूमके नये फूल और श्रीखण्डचन्दनके अभावमें कपूरके देनेका विधानहै । यह दोनों नहीं तो वैद्य लालचन्दनका प्रयोगकरे । लालचन्दन नहो तो वैद्योंको चाहिये कि खसको ग्रहण करे । अतीसके अभावमें नागरमोथा, हरके अभावमें आमला, और नागकेशरके अभावमें पद्मकेशरका व्यवहार करना चाहिये. मेदा, जीवक, काकोली, ऋद्धि और बृद्धि इनके अभावमें क्रमानुसार शतावरी, विदारीकंद, असगंध, और वाराहीकन्दका प्रयोगकरे । अर्थात् मेदके अभावमें शताबरी, जीवकके अभावमें विदारीकन्द, काकोलीके अभावमें असगंध और ऋद्धि वृद्धिके अभावमें वाराहीकन्द (चमारआलू) ग्रहणकरे ॥ ११२ ॥ ११३ ॥ ११४ ॥ ११५ ॥

---

१ वाराहीकन्दसंज्ञन्तुपश्चिमेगृष्टिसंज्ञकः ।
वाराहीकन्दएवान्यैश्चर्म्मकारालुकोमतः ॥
अनूपसम्भवेदेशेवराहइवलोमवान् ॥ भावप्रकाशे ।

अथार्त् पश्चिमदेशमें वाराहीकन्दको गेंठी कहते हैं, पूर्वकी ओर चमारआलूक नामसे प्रसिद्धहै । यह आनुप (जलीय) देशमें जन्मताहै शूकरकेसे रोम इसपर होतेहैं ।

सुवर्णाभावतःस्वर्णमाक्षिकंप्राक्षिपेद्बुधः ।
श्वेतंतुमाक्षिकंज्ञेयंबुधैरजतवद्ध्रुवम् ॥ ११६ ॥
माक्षिकस्याप्यभावेतुप्रदद्यात्स्वर्णगैरिकम् ।
सुवर्णमथवारौप्यंमृतंयत्रनलभ्यते ॥ ११७ ॥
तत्रकान्तेनकर्म्माणिभिषक्कुर्याद्विचक्षणः ।
कान्ताभावेतीक्ष्णलौहंयोजयेद्वैद्यसत्तमः ॥ ११८ ॥
मत्स्यण्डाभावतोदद्युर्भिषजःसितशर्कराम् ।
असम्भवेसितायास्तुबुधैःखण्डंप्रयुज्यते ॥ ११९ ॥

सुवर्णके अभावमें सोनामक्खी, चांदीके अभावकें रूपामाक्खी-स्वर्णमाक्खीके अभावमें पीलागेरू प्रयोगकरे । भस्म किये सुवर्ण, अथवा चांदीके अभावमें चतुर वैद्यको चाहिये कि कान्तिसार लोहेसे कार्य पूराकरे । कान्त लौह न मिलै तो इस्पातकी भस्मका प्रयोग करना ठीकहै । मिट्टीके अभावमें श्वेत शर्करा और चीनीके अभावमें खांडका प्रयोग करना ठीकहै ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ ११८ ॥ ११९ ॥

ग्रन्थान्तरे ।

सुवर्णमथवारौप्यंयोगेयत्रनलभ्यते ।
तत्रलौहेनकर्म्माणिभिषक्कुर्याद्विचक्षणः ॥ १२० ॥

भस्म किये हुए सुवर्ण या भस्मकी हुई चांदीका अभावहो, तो चतुर वैद्यको चाहियेकि वहांपर जारित लौहका प्रयोगकरे १२०

रसाञ्जनस्याभावेतुसम्यग्दार्वीप्रयुज्यते ।
सौराष्ट्र्यभावतो देयास्फटिका तद्गुणा जनैः॥१२१

१ 'सौराष्ट्री' सोरटी माटी इतिलोके ।
२ 'स्फटिका' फटकिरी ।

तालीशपत्रकाभावेस्वर्णतालीप्रशस्यते ।
भाग्र्यभावेतुतालीशंकण्टकारीजटाथवा ॥ १२२॥
रुचकाभावतोदद्याल्लवणंपांशुपूर्वकम् ॥
अभावेमधुयष्टयास्तुधातकीञ्चप्रयोजयेत् ॥१२३॥

रसौत नमिले तो तहाँ दार्वीक्वाथ (दारूहलदीका क्वाथ) प्रयोगकरे। गोपीचंदन न मिले तो तिसके गुणसे युक्त फट्-किरी ग्रहणकरे। तालीशपत्रके अभावमें स्वर्णताली श्रेष्ठहै। भारंगीके अभावमें तालीशपत्र अथवा कटेरीकी जड़ ग्रहणकरे चौहारके अभावमें पांगानोन और मुलहटीका अभाव होने-से धातकीपुष्प (धायफूल) का प्रयोग करना चाहिये ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

अम्लवेतसकाभावेचुक्रंदातव्यमिष्यते ।
द्राक्षायदिनलभ्येतप्रदेयंकाश्मरीफलम् ॥ १२४ ॥
तयोरभावेकुसुमंबन्धूकस्यमतंबुधैः ।
लवङ्गकुसुमंदेयंनखस्याभावतःपुनः ॥ १२५ ॥
कस्तूर्य्यभावेकक्कोलंक्षेपणीयंविदुर्बुधाः ।
कक्कोलस्याप्यभावेतुजातीपुष्पंप्रदीयते ॥१२६॥
सुगन्धिमुस्तकंदेयंकर्पूराभावतोबुधैः ।
कर्पूराभावतोदेयंग्रान्थिपर्णविशेषतः ॥ १२७ ॥

अमलवेतके अभावमें चूका, दाखके अभावमें गाम्भारी-

---

(१) " रुचकं " चौहार।
(२) " पांशुलवण " खारी अथवा 'रेह' इति लोके ।
(३) कस्तूरीणामभावेतु ग्राह्यागन्धशठी बुधैः । इतिपाठान्तरम् । अर्थात् कस्तूरीके अभावमें आँबिया हलदीले ॥

फल, गाम्भारीफलके अभावमें दुपहरियाका फूल पंडितलोग व्यवहार करतेहैं। नखीके अभावमें लौंगके फूल, कस्तूरीके (३) अभावमें काँकोली और तिसके अभावमें चमेलीके फूल दिये जातेहैं। कपूरके अभावमें गठीवन अच्छाहै । परन्तु कभी २ पंडितलोग सुगन्धित नागरमोथेकाभी व्यवहार करतेहैं ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ १२७ ॥

यदिनस्याद्दारुनिशातदादेयानिशाबुधैः।
अभावेकोकिलाक्षस्यगोक्षुरंबीजमिष्यते ॥ १२८॥
अन्तःसम्मार्ज्जनेज्ञेयाह्यजमोदायमानिका।
बहिःसंमार्ज्जनेसैवविज्ञातव्याजमोदिका ॥ १२९ ॥

दारूहलदीके अभावमें पंडितलोग हलदीका व्यवहार करतेहैं। तालमखानेके अभावमें गोखरूके बीजोंको ग्रहण करतेहैं खानेकी औषधिके विधानमें अजमोद शब्दके स्थलमें यवानी (अजवायन) और बाहर लेपादिमें अजमोद शब्दसे उग्रगन्धा (वच)को ग्रहणकरे ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

यत्रयद्द्रव्यमप्राप्तंभेषजेपरपूर्वतः।
ग्राह्यंतद्गुणसाम्यात्तुनतत्रक्वापिदूषणम् ॥ १३० ॥

किसी औषधिमें तेल या घृतादिमें यदि किसी द्रव्यका अभावहो,तो इस न प्राप्तहुए द्रव्यके(गणके) पहलेकी, या पीछली औषधि ग्रहणकरे। चतुर वैद्य इस न प्राप्तहुये द्रव्यकी समानगुणवाली औषधिका प्रयोगकरे ॥ १३० ॥

अन्यानियानीहरसायनादौयोगेचवस्तूनिचकीर्त्तितानि
तेषामलाभेनचवृद्धवैद्यप्रसिद्धितस्तानिहरन्तिवैद्याः ॥

परन्तु रसायनादिमें जिन औषधियोंका वर्णनहै, उन औ-

षधियोंके अभावमें वृद्ध वैद्योंके उपदेशानुसार जैसा प्रचलितहै, वैसा ग्रहणकरे ॥ १३१ ॥

अत्रप्रोक्तानिवस्तूनियानितेषुच तेषुच ।
योज्यमेकतराभावेऽपरंवैद्येनजानता ॥ १३२ ॥
रसवीर्यविपाकाद्यैःसमंद्रव्यंविचिन्त्यच ।
युञ्जात्तद्विधमन्यच्चद्रव्यणांतुरसादिवित् ॥ १३३ ॥
योगेयदप्रधानंस्यात्तस्यप्रातिनिधिर्म्मतः ।
यत्तुप्रधानंतस्यापिसदृशंनैवगृह्यते ॥ १३४ ॥
व्याधेरयुक्तंयद्द्रव्यंगणोक्तमपितत्त्यजेत् ।
अनुक्तमपियुक्तंयद्योजयेत्तद्रसादिवित् ॥ १३५ ॥

यहां पर जिस २ वस्तुके बदले जिस २ वस्तुके प्रयोग करनेका वर्णन हुआ, उन २ वस्तुओंकाभी अभाव होतो उनकी समान और वस्तुओंकाभी व्यवहार होसकताहै । रस-वीर्य, विपकादिमें ज्ञानी वैद्य विचारके साथ द्रव्यका रस, वीर्य विपाकादिमें समता निरूपण करके तुल्यरसादि गुण युक्त और द्रव्यभी प्रयोगकरे । परन्तु औषधिके गणमें अनेक औषधि योंकी समष्टिकरनेसे जो कोई द्रव्य मुख्यहो, उसके बदलेमें बराबर गुणवाली औषधि न ग्रहणकरके, जो द्रव्य प्रधान (मुख्य) नहीं है उसकी समान गुणवाला द्रव्य ग्रहण करे । रस वीर्यादिके जाननेवाले चिकित्सकको चाहिये कि, रोगके अयोग्य औषधिगणमें कहीहो तोभी उसका त्यागकरे और रोगके योग्य औषधिगणमें न कही हो तोभी विचार करके उसको, प्रयोगकरे ॥ १३२ ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

इति वैद्यकपरिभाषाप्रदीपका प्रथमखंड समाप्त ।

अथ द्वितीयखण्डः।

पंचविधकषायमाह।

स्वोरसःस्वरसःप्रोक्तःकल्कोद्दषादिपेषितः।
क्वथितस्तुश्रृतःशीतःशर्वरीमुषितोमतः ॥ १ ॥
क्षिप्तोष्णतोये मृद्दितःफाण्ट इत्याभिधीयते।
पंचैताश्चसमुद्दिष्टाःकषायाणांप्रकल्पनाः।
गुरवःस्युर्यथापूर्वंलघवःस्युर्यथोत्तरम् ॥ २ ॥

कषाय पांच प्रकारकी है यथा,–स्वरस, कल्क, क्वाथ, शीत और फान्ट। तिनमें कच्चे द्रव्यको विना जलके कूटकर मलके रस ग्रहण करनेसे तिसको स्वरस कहते हैं, पत्थपर पीस लैनेसे तिसको कल्क कहतेहैं. द्रव्य कूटकर जलद्वारा पाक करलेनेसे तिसको क्वाथ, और पहले दिन जलमें भिजोकर दूसरे दिन छान लेनेसे तिसको शीत, और कूटा हुआ द्रव्य गरम जलमें भिगोकर छान लैनेसे तिसको फान्ट कहतेहैं। इन पांच प्रकारकी कषायमें पूर्वानुक्रमसे भारी और क्रमानुसार उत्तर ये लघुहैं, अर्थात् कल्कसे स्वरसभारी हैं, स्वरससे कल्क लघुहै इत्यादि ॥ १ ॥ २ ॥

विश्वामित्रेण शीतफान्टयोर्लक्षणमुक्तम्।

तद्यथा।

षड्भिःपलैश्चतुर्भिर्वासलिलाच्छीतफाण्टयोः।
आप्लुतंभेषजपलंरसाख्यायांपलद्वयम् ॥ ३ ॥

शीत और फान्ट बनाना हो तो छयपल (४८ तोला) अथवा ४ पल (३२) तोला जलमें। एक पल (८ तोला)

औषधि भिगोरक्खै, परंतु स्वरसके बदले तिसका व्यवहार करना हो तो इस जलमें २ पल (१६ तोले) औषधि भिगोना ठीकहै ॥ ४ ॥

स्वरसमाह।

सद्यःक्षुण्णार्द्रद्रव्यस्यवस्त्रयन्त्रादिपीडनात्।
योरसस्त्वभिनिर्यातिस्वरसःसंप्रकीर्त्तितः ॥ ४ ॥
शुष्कद्रव्यमुपादायस्वरसानामसम्भवे।
वारिण्यष्टगुणेसाध्यंग्राह्यंपादावशेषितम् ॥ ५ ॥

सद्य आर्द्र (ताजा रससे युक्त) द्रव्य ग्रहण करके तत्काल कूटकर वस्त्र या यंत्रादि करके मलने पर उसमेंसे जो रस निकले, तिसको स्वरस करतेहैं। यदि किसी द्रव्यका स्वरसको अभावहो अर्थात् गीला द्रव्य यदि न पाया जाय तो वही सूखा द्रव्य आठगुणे जलमें पकावै। जब चौथाई रहै तो उताकर तिसको ग्रहण करे ॥ ४ ॥ ५ ॥

अन्यच्च।

आहृतात्तत्क्षणाकृष्टात्क्षुण्णाद्रव्यात्समुद्धरेत्।
वस्त्रनिष्पीडितोयस्तुस्वरसोरसउच्यते ॥ ६ ॥
कुडवंचूर्णितंद्रव्यांक्षिप्तंताद्द्विगुणेजले।
अहोरात्रंस्थितंतस्माद्भवेद्वारसउत्तमः ॥ ७ ॥

द्रव्यको लाकर तत्काल तिसको कूटै और कपडेसे अमेठकर तिसके निचोडनेसे जो रस पाया जाताहै तिसको स्वरस कहतेहैं, अथवा सूखा हुआ आधसेर द्रव्य चूर्णकर एकसेर जलमें एक दिन एक राततक भिजोकर छानलियाजाय,तो उसकाभी व्यवहार स्वरसके बदले किया जाताहै ॥ ६ ॥ ७ ॥

अन्यच्च।

आदायशुष्कंद्रव्यंवास्वरसानामसम्भवे।
जलेष्टगुणितेसाध्यंपादशिष्टन्तुगृह्यते ॥ ८ ॥

सूखे द्रव्यका स्वरस नहीं पाया जाता, इसकारण सूखे द्रव्यको आठगुने जलमें पकावै, जब चौथाई रहे तब उतारकर स्वरसके बदले ग्रहण करे ॥ ८ ॥

अस्यपानमात्रामाह।

स्वरसस्यगुरुत्वाच्चपलमर्द्धंप्रयोजयेत्।
निःशोषितञ्चापिसिद्धंपलमात्रंरसंपिबेत् ॥ ९ ॥

स्वरस पाकमें भारीहै, इसकारण अर्द्धपल (४ तोला) की मात्राकरके इसको पानकरे। पहली कहीहुई रीतिसे सूखे द्रव्यको कूटकर जलमें पकानेसे जो रस पाया जाताहै, वह सबकी बनिस्वत पाकमें हलकाहै। वस वह १ पल (८) तोलाकी मात्रासे इसका प्रयोग किया जासकताहै ॥ ९ ॥

स्वरसभेदात्पुटपाकविधिमाह।

पुटेपक्वस्यद्रव्यस्यस्वरसोगृह्यतेयतः।
अतोऽयंपुटपाकःस्याद्विधानंतस्यकथ्यते ॥ १० ॥
द्रव्यमापोत्थितंजम्बुवटपत्रादिसम्पुटे।
वेष्टयित्वाततोबद्धादृढंरज्ज्वादिनातथा ॥ ११ ॥
मृल्लेपंद्व्यङ्गुलंकुर्यादथवाङ्गुलिमात्रकम्।
दहेत्पुटान्तरादग्नौयावल्लेपस्यरक्तता ॥ १२ ॥

पुटपाककरके किस २ द्रव्यका स्वरस ग्रहण किया जाताहै इसका अतएव पुटपाकका नियम कहते हैं। घाडियामें कूटा हुआ द्रव्य जामनके और बडके पत्ते आदिसे लपेट-

कर रस्सीसे भली भांति बांधकर गोबर मिलीहुई मिट्टीसे दो अंगुल या एक अंगुलका मोटा लेपदेकर पुटकी आगमें दग्ध करताहै । जब यह लेप लाल रंगकाहो जाय तब पाकको सिद्ध हुआ जानकर उतारले ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

अन्यच्च ।

पुटपक्वस्यकल्कस्यस्वरसोगृह्यतेयतः ।
अतस्तुपुटपाकानांयुक्तिरत्रोच्यतेमया ॥ १३ ॥
पुटपाकस्यमात्रेयंलेपस्यारुणवर्णता ।
लेपश्चद्व्यङ्गुलंस्थूलंकुर्याद्वाङ्गुलिमात्रकम् ॥१४॥

पुटमें पके हुए कल्कका स्वरस ग्रहण करना आवश्यक होताहै इससे पुटपाककी विधिका वर्णन करते हैं। घडियाके लेपका रंग वैसे ही लाल होजाय । वैसेही पुटपाकको सिद्ध हुआ जानकर तत्काल अग्निसे निकालले । इस घडियामें मट्टीका लेप २ अंगुल या १ अंगुल मोटाहो ॥ १३ ॥ १४ ॥

कल्कमाह ।

द्रव्यमात्रंशिलापिष्टंशुष्कंवाजलमिश्रितम् ।
तदेवसुरभिःपूर्वैःकल्कइत्याभिधीयते ॥
आवापस्त्वथप्रक्षेपस्तस्यपर्यायउच्यते ॥ १५ ॥

सूखा या जलयुक्त द्रव्य शिलापर पीस लिया जाय तो इसको कल्क कहते हैं । ऐसा आयुर्वेदके आचार्य मुनियोंने कहाहै । आवाप और प्रक्षेप कल्कके एक पर्यायक शब्द हैं१५॥

कल्कस्यैषद्भेदाच्चूर्णमाह ।

अत्यन्तशुष्कंयद्द्रव्यंसुपिष्टंवस्त्रगालितम् ।
चूर्णंतच्चरजःक्षोदस्तस्यपर्यायउच्यते ॥ १६ ॥

सूखा हुआ द्रव्य, भली भांतिसे शिलापर पीसकर कपड- छान कियाजाय तो इसे चूर्ण कहतेहैं। रज और क्षोद इसके पर्यायहै ॥ १६ ॥

अन्यच्च ।

द्रव्यमात्रंशिलापिष्टंशुष्कंवासजलंभवेत् ।
प्रक्षेपावापकल्कास्तेतन्मानंकर्षसम्मितम् ॥१७॥
कल्केमधुघृतंतैलंदेयंद्विगुणमात्रया।
सितांगुडंसमंदद्याद्द्रवादेयाचतुर्गुणाः ॥ १८ ॥

सूखा अथवा कच्चा द्रव्य शिलापर पीसलेनेसे तिसको प्रक्षेप, आवाप और कल्क कहतेहैं। इसका परिमाण एककर्ष (२ तोला) है। कल्कमें शहरत, घी, और तेलका प्रक्षेप देना होतो कल्कसे दुगनाले, चीनी और गुड़कल्ककी बराबरले और द्रव (तरलद्रव्य दूध जलादि) द्रव्य, कल्कसे चौगु- णाले ॥ १७॥ १८ ॥

अथक्काथमाहशार्ङ्गधरः।

पानीयंषोडशगुणंक्षुण्णेद्रव्यपलेक्षिपेत् ।
मृत्पात्रेक्काथयेद्ग्राह्यमष्टमांशावशेषितम् ॥ १९ ॥
तज्जलंपाययेद्धीमान्कोष्णं मृद्वग्निसाधितम् ।
शृतक्काथकषायश्चनिर्य्यूहःसनिगद्यते ॥ २० ॥
आहाररसपाकेचसञ्जातेद्विपलोन्मितम् ।
वृद्धवैद्योपदेशेनपिबेत्क्काथंसुपाचितम् ॥ २१ ॥
क्काथेक्षिपेत्सितामंशैश्चतुरष्टकषोडशैः ।
वातपित्तकफातङ्केविपरीतंमधुस्मृतम् ॥ २२ ॥

एक पलद्रव्य (८ ला) को कूट १६ गुणे जलमें मिलाय

मिट्टीके पात्रमें औटावै, जब आठवां भाग जलतेर रहजाय तो उतारकर छानले । इसको क्काथ कहते हैं।इस काथको थोडासा गरम रहतेही पीजाय । शृत, क्काथ कषाय, और निर्यूह यह कई एक इसके पर्यायहैं । जब खाया हुआ अन्न पचजाय तो दोपल (१६तोला) इस क्काथको पानकरनेकी विधिहै।वायुसे उत्पन्न हुए रोगमें क्काथसे चौथाई चीनीमिलाय इसको पानकरे, पित्तसे उत्पन्नहुए रोगमें आठवे अंशका एक अंश और कफसे उत्पन्न हुये रोगमें १६ वां अंश चीनीका मिलाकर इसको सेवन करे । परन्तु क्काथमें मधुका प्रक्षेप देना हो तो उस्से विपरीत अर्थात् वायुके कोपमें क्काथके सोल्हवे हिस्सेका एक हिस्सा, पित्तके कोपमें आठवे अंशका एक अंश, कफके कोपमें चार अंशका एक अंश शहद डालकर पानकरे ॥ १९॥२०॥२१॥२२॥

अन्यच्च ।

द्रव्यादापोत्थितात्तोयेवह्निनापरिपाचितात् ।
निःसृतोयोरसःपूतःसशृतःसमुदाहृतः ॥
क्काथःकषायोनिर्यूहःपर्यायस्तस्यकीर्तितः ॥२३॥

कूटाहुआ द्रव्य जल मिलाय अग्निमें पकावै फिर कपडेमें मसलकर उसको छानले, छान्नेसे जो रस निकलता है तिसको शृत कहते हैं। क्काथ,कषाय और निर्यूह इसके पर्याय हैं२६॥

शीतमाह ।

क्षुण्णद्रव्यपलंसम्यक्षड्भिर्ज्जलपलैःप्लुतम् ।
शर्वरीमुषितंसम्यग्ज्ञेयःशीतकषायकः ॥ २४ ॥

एकपल (८ तोला) द्रव्य कूटकर छयपल (४२ तोला) जलमें एकराततक भिगोरक्खै, इसको शीत कहतेहैं ॥ २४ ॥

अवान्तरभेदात्तण्डुलोदकमाह ।

तण्डुलान्कणशःकृत्वापलंग्राह्यंहितण्डुलात् ।
चतुर्गुणंजलंदेयंतण्डुलोदककर्म्मणि ॥ २५ ॥

एकपल (८ तोला) सूखेहुए चावल भलीभांतिसे कूटकर चौगुने जलमें एकादिन या एक राततक भिजो रक्खै फिर छानले, इसको तण्डुलोदक कहतेहैं ॥ २५ ॥

अन्येप्याहुः ।

शीतकषायमानेनतण्डुलोदककल्पना ॥२६॥

कोई २ कहतेहैं शीतकषाय जिस परिमाणसे प्रयोग किया जाताहै तण्डुलोदकका प्रयोगभी इसी परिमाणसे करना चाहिये ॥ २६ ॥

फाण्टमाह ।

क्षुण्णद्रव्यपलेसम्यग्जलमुष्णंविनिक्षिपेत् ॥
पात्रेचतुष्पलमितंततस्तुस्रावयेज्जलम् ।
सोऽयंपूतोद्रवःफाण्टोभिषग्भिरभिधीयते ॥२७

एकपल द्रव्य कूटकर मिट्टीके पात्रमें चौगुने गरम जलके साथ भिगोरक्खे, इसको फाण्ट कहतेहैं ॥ २७॥

प्रसंगादुष्णोदकमाह ।

अष्टमांशावशेषेणचतुर्थेनार्द्धकेनवा ।
अथवाक्काथनेनैवसिद्धमुष्णोदकंवदेत् ॥ २८ ॥

जल अग्निके तापसे औटाकर अष्टमांश चतुर्थांश अथवा अर्द्धांश बचनेपर उतारले या थोडासाही सिद्ध करले, इसको उष्णोदक कहते हैं ॥ २८ ॥

क्काथादेरवान्तरभेदाल्लेहादिकमाह ।

क्काथादेर्यापुनःपाकाद्घनत्वंसारसक्रिया ।

अवलेहश्चलेहश्चप्राशइत्युच्यतेबुधैः ॥ २९ ॥
" मात्रास्यात्तत्पलोन्मिताइत्यपिपाठः "

काथादिको दुबारा अग्निके तापसे पाककरके घना किया जाय तो इसको अवलेह कहते हैं । पंडित लोग इसको लेह और प्राश कहा कहते हैं ॥ २९ ॥

वटकोमोदकःपिण्डीगुडोवर्त्तिस्तथावटी ।
वटिकागुटिकाचेतिसंज्ञावान्तरभेदतः ॥ ३० ॥
मात्राच्छायातपच्छेदवासाविश्लेषपेषणैः ।
मन्थपीडनसंयोगजलकालबलाबलैः ॥ ३१ ॥
द्रव्यंगुणान्तराधानंविशिष्टंक्रियतेयतः ।
तेनमोदकचूर्णादिवटकाश्चयथाश्रुति ॥ ३२ ॥

वडी, लड्डू, पिण्डी, गुड, वत्ती, लम्बीगोली, गोली और गुटिका यह एक पर्यायक शब्दहैं । मात्रा, छाया, आतप, छेदन, वास, विश्लेष, पेषण, मंथन, पीडन, संयोग, जल, काल और बलाबल विशेषसे द्रव्यका गुणभी विविधप्रकारका होजाताहै । मोदक, चूर्ण और वटिकादिका जिसका जैसा गुण प्रसिद्धहै, तिसका तैसा गुण जानना ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

अस्यार्थः--मात्रादयश्चैते द्रव्याणां विशिष्टगुणान्तराधानं जनयन्ति मात्रादिभेदात् । एकमपि द्रव्यं मात्रादिभेदेन विकारविशेषं नाशयति । यथा रसशास्त्रे त्रिविक्रमः । नवायसलौहं शोथपाण्ड्वादीन् हन्ति त्रिकत्रयादी लौहश्च ग्रहण्यादिकमित्यनयोर्द्रव्याणां भेदाभावः । किंत्वनयोर्लौहंच केवलं मात्राभेदत्वेनैवगुणभेदः, एवं सर्वत्र छायातपादिष्वपि ज्ञेयम् । केषाञ्चिद्भेषजद्रव्याणां अवान्तरभेदविरहेऽपि छायाशोषत्वेन च गुणभेद इति गुरवः ॥

द्रव्याणांमात्राविधिर्लिख्यते।

स्थितिर्नास्त्येवमात्रायाःकालमग्निंबलंवयः
प्रकृतिंदेशदोषौचदृष्ट्वामात्रांप्रकल्पयेत् ३३॥
यतोमन्दानलोह्रस्वाहीनसत्वानराःकलौ।
अतस्तुमात्रातद्योग्याप्रोच्यतेशुद्धसंम्मता[1] ३४

औषधि देनेकी मात्राका कोई नियम नियत नहींहै। काल, अग्नि, बल, उमर, स्वभाव, देश और वातादि दोषके देखनेसें चिकित्सक विचार करके औषधिकी मात्राको कल्पितकरे (निर्द्धारित नियमकी बनिसवत औषधीकी मात्रा कम या ज्यादे हो तो रोग दूर नहीं होता,वरन् अनेक विघ्नोंके होनेकी सम्भावनाहै (क्योंकि कलिकालमें मनुष्य मन्दाग्नियुक्त, क्षुद्राकार, और सतोगुणहीन होंगे; अतएव तिसके अनुसार विचारकरके औषधिकी मात्राका प्रयोग करना ठीकहै ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अन्यःप्रकारः।

नाल्पंहन्त्यौषधंव्याधिंयथाल्पाम्बुमहानलम्।
दोषवच्चातिमात्रंस्याच्छस्यमृत्युदकंयथा॥ ३५॥

जिसप्रकार अत्यन्त प्रज्वलित अग्निके ऊपर थोडासा जल डालनेसे वह अग्नि नहीं बूझती; तैसेही बडे रोगमें अल्प मात्राकी औषधिका प्रयोग करनेसे रोग दूर नहीं होता; और खेतमें अधिक जल वर्सनेसे जैसे नाज नष्ट होता है; तैसेही साधारण रोगमें औषधिकी अधिक मात्रा प्रयोग करनेसेभी रोगीका नाश होताहै ॥ ३५ ॥

---

१ सर्वसम्मता इति पाठान्तरम्।

अन्यच्च ।

मात्रयाहीनयाद्रव्यंविकारंननिवर्त्तयेत् ॥
द्रव्याणामतिबाहुल्याद्व्यापत्संजायतेध्रुवम् ॥३६॥

मात्राहीन (मात्राके अनुसार मात्रा पूरी नहो थोडीहो तो) द्रव्यसे रोगको आराम नहीं होता और मात्राकी अधिकाई होनेसे निश्चय विपत्ति पडतीहै ॥ ३६ ॥

अन्यच्च ।

मात्रयानास्त्यवस्थानंदोषमग्निंबलंवयः ।
व्याधिंद्रव्यञ्चकोष्ठञ्चवीक्ष्यमात्रांप्रयोजयेत् ॥ ३७॥
उत्तमस्यपलंमात्रात्रिभिश्चाक्षैश्चमध्यमे ।
जघनस्यपलार्द्धेनस्नेहक्काथ्यौषधेषुच ॥ ३८ ॥

औषधिकी मात्राका कोई नियत नियम नहींहै । दोष, अग्नि, बल, उमर, रोग, औषध और कोष्ठ (कब्ज रहना) देखकर विचारपूर्वक औषधिकी मात्राका प्रयोग करे। स्नेह और क्काथ्य औषध प्रबलाग्नियुक्त मनुष्योंके लिये ८ तोला, मध्यम अग्निवालोंके लिये ६ तोला और हीनअग्निवालोंके लिये ४ तोलेका परिमाण प्रयोग करना उचितहै॥३७॥३८॥

१उत्तमस्य प्रबलाग्निबलपुरुषस्य, न पुनर्युगविशेषजातस्य पुरुषस्य क्षितौ कलावेव शास्त्रप्रचारात्।सत्ययुगादौ व्याध्यभावात । उत्तमादिशब्दानां युगादीनामनभिधानाच्च पलमत्रसौश्रुतमिति गुरवः । चरकार्द्ध पलोन्मानं चरके दशरक्तिकैरिति सौश्रुतपलं चरकार्द्धं पलम् । त्रिभिरक्षैरिति चरकस्य त्रिभिस्तोलैः । पलार्द्धेनेति चरके कर्षेकेन युगप्रभावाज्जघन्या एव सर्वे अतएव जघन्यामात्रा सर्वेषां दातव्या । किन्तु "कर्षश्चूर्णस्य कल्कस्य गुटिकानाञ्च सर्वशः"इति जघन्यमात्रामाश्रित्य चक्रदत्तेन स्वसंग्रहे लिखितमिति दिक् । क्काथ्यमित्यर्हणार्थ यत् । क्काथमर्हतिक्काथ्यंतेषु स्नेहक्काथ्यौषधेषु अथवा क्काथ्यौषधेषु चेति क्काथ्यमौषधं यैः क्षीरजलकाञ्जिभिः । अतस्तानि क्षीरादीनि भक्षणीयानि । अतोभक्षणमात्रेति गुरवः प्राहुः ॥

सार्द्धपलंपलञ्चार्द्धंविदध्याद्गुडखण्डयोः ।
श्रेष्ठमध्यमहीनेषुमात्रेयंमुनिभिःकृता ॥ ३९ ॥

प्रबलअग्निवालोंके लिये १॥ पल (१२ तोला) मध्यम अग्निवालोंके लिये एकपल (८ तोला) और हीनअग्निवालोंके लिये आधापल (४ तोला) औषधिकी मात्रा प्रयोग करना उचितहै ॥ ३९ ॥

अत्रस्यात्सौश्रुतंपञ्चरक्तिमासात्मकंपलम् ।
मोदकंवटकंलेहंकर्षमात्रंप्रयोजयेत् ॥
कर्षद्वयंपलंवापिदेयंकोष्ठाग्न्यपेक्षया ॥ ४० ॥

यहां सुश्रुतमें कहेहुए पांच रत्तीका माषा, इसमानसे पलग्रहण करे. मोदक, वटक और अवलेहादिकी मात्रा एक कर्ष (२ तोला) रक्खै । परन्तु कोष्ठ और अग्निका बलाबल विचारकर दो कर्ष अथवा १ पल (८ तोला) तककी मात्राभी प्रयोगकीजासकती है ॥ ४० ॥

अर्थात् सत्य, त्रेता और द्वापरयुगमें समस्तजीव रोगहीनथे। वैद्यक ग्रंथ और समस्त औषधियें रोग उत्पन्न होनेके पीछे संग्रह हुईहै।(इसका विस्तार चरक, सुश्रुत और भावप्रकाशादि ग्रंथोंमें देखो) इसकारण कलिकालमें समस्तजीव तेजहीन और व्याधिग्रस्त हुए हैं; अतएव युगके प्रभावसे औषधिकी हीनमात्राकाही प्रयोग करना चाहिये। ऊपर जिसस्थानमें पल कहाहै, सो गुरुके उपदेशानुसारही सुश्रुतोक्त मानमें ग्रहणकरना।क्योंकि चरकके मतसे मासा दशरत्तीकाहै,सुश्रुतके मतसे मासा पांच रत्तीकाहै.बस. चरकके आधे पलसे सुश्रुतका एकपल होता है। चक्रदत्तनेभी अपने संग्रहग्रंथमें चूर्ण, कल्क और गुड़िकादिके सम्बन्धमें ऐसीही जघन्यमात्रा (हीनमात्रा)प्रयोगकरनेकी विधि लिखीहै।अतएव औषधादिकी मात्रा गुरुके उपदेशानुसार कल्पित करके प्रयोगकरे ॥

श्रेष्ठमध्यमहीनेषुद्वादशाष्टचतुष्टयैः।
माषकैर्गुग्गुलोर्मात्रांकोष्ठंवीक्ष्यावतारयेत् ॥ ४१ ॥

प्रबल अग्निवालोंके लिये १२ मासा, मध्यम अग्निवालोंके लिये ८ मासा और हीन अग्निवालोंके लिये ४ मासा गूगल कोष्ठके अनुसार विचारकर देना चाहिये ॥ ४१ ॥

गुञ्जामात्रंरसंदेविहेमजीर्णंचभक्षयेत्।
तारंत्रिगुञ्जकंप्रोक्तंरविजीर्णाद्विगुञ्जकम् ॥ ४२ ॥
लोहाभ्रनागवङ्गानांखर्परस्यशिलाजतोः।
षड्गुञ्जाप्रतिमामात्रामलोपरसमाषकम् ॥ ४३ ॥
कांस्यपित्तलयोर्मानंभक्षयेत्ताम्रजीर्णवत्।
यवमात्रंविषंदेविगुञ्जामात्रंतुकुष्ठिने ॥ ४४ ॥
वज्रंयवद्वयमितंतालकंयवसप्तकम्।
ततोबुद्ध्वाभिषग्दद्यात्प्रायोमात्रेतिकीर्त्तिता ॥४५॥

महादेवजीनें पार्वतीजीसे कहा कि, हे देवि! पारा और सुवर्ण एक रत्ती, चांदी ३ रत्ती, तांबा दो रत्ती, और लोहा, अभ्रक, शीशा, रांग, खपडिया, शिलाजीत, छय रत्ती मात्रासे और लौह-मैल और उपरस, संयोजकरस यथा शिंगरफादि एक माष परिमाणसे प्रयोग करै। कांसी और पातल तांबे-की सामान दो रत्ती परिमाणमें, विष एक जौ (परंतु कुष्ठ रोगवालेको एक रत्ती विषदे) हीरा दो जौ और हरिताल सात जौ मात्रासे बुद्धिमान् चिकित्सक गुण विचारकरके प्रयोग करे ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

कालिङ्गंसौश्रुतंमानंपञ्चरक्तिकमानतः।
दशरक्तिकमानंतुमागधंचरकेरितम् ॥ ४६ ॥

तयोर्मागधमानन्तुप्रशंसन्तिभिषग्वराः।
कालिङ्गंशुद्धलौहादिद्रव्यस्यकल्पनेमतम् ॥४७॥
कषायोऽनुवासनादिद्रव्यादानेतुमागधम्।

कालिंगमान और सुश्रुतोक्त मानमें पांच रत्तीका माषाहै। मागधमानमें दशरत्तीका माषा चरकमुनिनें कहाहै। कालिंगमान और मागधमान, इन दोनोंमें मागधमानही चिकित्सकोंके निकट आदरणीयहै। शुद्धलौहादिकी कल्पनाप्रयोगके सम्बन्धमें कालिंगमान और कषाय व अनुवासनादिके द्रव्य ग्रहण सम्बन्धमें मागधमान श्रेष्ठहै ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

पाचनादौजलपरिमाणमाह।

कर्षादौतुपलंयावद्द्यात्षोडशिकंजलम्।
ततस्तुकुडवंयावत्तोयमष्टगुणंभवेत् ॥ ४८ ॥
चतुर्गुणमतश्चोर्द्ध्वंयावत्प्रस्थादिकंभवेत्।
क्वाथ्यद्रव्यपलेकुर्यात्प्रस्थार्द्धंपादशेषितम् ॥४९॥

पाचनादि बनानेमें एक कर्षसे एक पलतक द्रव्यमें सोलह गुण जल डालकर औटावै। एक पलसे ऊपरको कुडव (आधा सेर)तक द्रव्यका परिमाण हो तो आठगुणे जलसे पाककरे कुडवके ऊपर प्रस्थ (२ दोसेर) आदि पाचनके द्रव्यका परिमाण जितनाहों तिसके चौगुने जलसे पाककरे ॥ ४८ ॥४९॥

---

१ क्वाथ्यद्रव्यपलेइति। प्रबलाग्निबलपुरुषापेक्षया क्वाथ्यद्रव्यस्य पलं ग्राह्यम्। तत्साधनार्थं प्रस्थार्द्धजलं दत्त्वा पादावशिष्टं कार्यम्। प्रस्थार्द्धत्वात् जलमष्टगुणं शरावद्वयं पादशेषेण पलचतुष्टयं ग्राह्यमित्यर्थः। अर्थात् प्रबलाग्निवाले पुरुषके लिये एक पल (८ तोला) पाचनके द्रव्यका परिमाणहो तिसमें २ सेर जल डालकर औटावै। जब चौथाई रहै, तब उतारले।

मृदौचतुर्गुणंदेयंकाठिनेऽष्टगुणंभवेत् ।
कठिनात्काठिनंयच्चदद्यात्षोडशिकंजलम् ॥ ५० ॥
मृद्वादिद्रव्यसंघातेमानानुक्तौचिकित्सका ।
मध्यस्थोभयभागित्वादिच्छन्त्यष्टगुणंजलम् ५१॥

पाचनका द्रव्य मृदु और कुडवका अधिक परिमाणहो तो चौगुणे जलसे पाककरे, कठिन होतो अष्टगुण और अत्यंत कठिन होतो १६ गुण जल डाले । जो पाचनमें मृदु कठिन और अत्यन्त कठिन द्रव्य मिलेहों तो आठ गुण जलसे पाक करे ॥ ५० ॥ ५१ ॥

जलपरिमाणप्रसङ्गतःपाचनानां द्रव्यपरिमाणमाह ।

दशरक्तिकमानेनगृहीत्वातोलकद्वये ।
दत्त्वाम्भःषोडशगुणंग्राह्यंपादावशेषितम् ॥५२॥
इमांमात्रांप्रकुर्वन्तिभिषजःपाचनेषुच ।

दशरत्तीका जो माषा होताहै उसमानमें पाचनका द्रव्य २ तोला ग्रहण करके १६ गुण (३२ तोला) जलमें पकाकर चतुर्थांश (८ तोला) जब रह जाय तब उतारले । वैद्योंको पाचनमें ऐसी मात्राका प्रयोग करना चाहिये ॥ ५६ ॥

यवाग्वादिसाधने जलभेषजयोः परिमाणमाह ।

क्वाथ्यद्रव्याञ्जलिंक्षुण्णंस्रावयित्वाजलाढके ॥५३॥

१मृद्वादि इति आर्द्रद्रव्यम् आदिशब्दात् कठिनातिकाठिनयोर्ग्रहणम्। एतेषां मिलितानां द्रव्याणामनुक्तजलपरिमाणानां पाचनादिसाधनविधौ जलपरिमाणं मध्यस्य मध्यस्थितस्य मृद्वतिकठिनयोः कठिनस्य जलपरिमाणं प्राक् यदुक्तम् अष्टगुणं तदेव दत्त्वा पक्तव्यम् । उभयभागित्वादिति उभयोर्मृद्वतिकठिनस्य जलपरिमाणं प्राग्यदुक्तम् । मध्य एव भागोक्तत्वादिति जलमष्टगुणमुचितमेव गुरवः ।

पादावशेषेतेनाथयवाग्वाद्युपकल्पयेत् ॥
यूषांश्चरसकांश्चैवकल्पेनानेनसाधयेत् ॥ ५४ ॥

अर्थ-आधसेर क्वाथके द्रव्य लेकर भलीभांतिसे कूटै और सोलहगुणे जलमें पकावै, जब चारसेर बाकी रहजाय तो उतारले, फिर इसहीके साथ यवागू पाक करे। जूस और रसादिकी कल्पनामें भी ऐसाही नियम जानें ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

यदप्सुशृतशीतासुषडङ्गादिप्रयुज्यते।
कर्षमात्रंततोद्रव्यंसाधयेत्प्रास्थकेऽम्भसि ॥ ५५॥
अर्द्धश्शृतंप्रयोक्तव्यंपानेपेयादिसंविधौ ॥ ५६ ॥

अर्थ-षडङ्ग जल बनानाहो, या क्वाथसे मांड, पेया, यवागू, जूस और मांस-रस (यखनी) आदि सिद्ध करनाहो, उसमें जिन औषधियोंकी आवश्यकताहो, उन सबको बराबर भाग दोदो तोला ग्रहण करके चार सेर जलमें सिद्ध करे, जब (२ सेर) रहजाय तो उतार कर छानले, जब शीतलहो जाय तो उस जलको पीनेके अर्थ या मंड, पेयादि पाक करनेमें व्यवहार करे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

कल्कसाध्यां पेयामाह (केसरीटीकाकारः)।

कर्षार्द्धंवाकणाशुण्ठ्योःकल्कद्रव्यस्यवापलम् ।
विनीयपाचयेद्युक्त्यावारिप्रस्थेनचापरान् ॥ ५७ ॥

अर्थ-कल्कसे पेया बनानाहो तो पीपल और सोंठ ब-

१ कर्षार्द्धमित्यादि-कणा शुण्ठी च तयोर्मिलित्वा कर्षार्द्धं गृहीत्वा कल्कद्रव्यस्य च तण्डुलादेः पलं विनीय, विनीयेति पाठे नीत्वा इत्यथः । विलीयेति पाठे कल्कीकृत्येत्यर्थः । वारिप्रस्थेनेति एकत्वमविवक्षितं अग्न्याद्यपेक्षया अधिकेनेति यावत् । तेन प्रस्थद्वये जले साधयित्वार्द्धशृतेन वारिप्रस्थेन युक्त्या किञ्चिन्न्यूनेन अधिकेन वा प्रबलाग्निपुरुषापेक्षया इत्यश्चापरान् कल्कसाध्यां यवागूं पाचयेत् सुसिद्धां कुर्यादित्यर्थः । एवमन्यत्रापि पेयादिसाधने प्रबलाग्निपुरुषादौ युक्त्या प्रचुरतरं सलिलं कल्कद्रव्यं वा ग्राह्यम् ।

राबर ले मिली हुई १ तोला और कल्क द्रव्य (चावलादि) ८ तोला लेकर ४ सेर जलमें पकावै, जब आधा रह जाय तो उतार कर छानले (यहांपर यह जानना आवश्यक है कि प्रबलाग्नि, समाग्नि और अल्पाग्निवालोंके भेदानुसार कल्कके सिद्ध करनेंके जलकी मात्राभी अलग २ होती है। वस आवश्यकतानुसार जलके लिखे हुए परिमाणकी अपेक्षा पेयादि साधनमें थोडा या बहुत (कम या ज्यादा) जलका परिमाण दिया जा सकताहै। चतुर वैद्योंको विचार कर जलकी मात्राको कल्पित करना चाहिये) ॥ ५७ ॥

साधनक्रममाह ।

कणाशुण्ठ्योः कर्षार्द्धं गृहीत्वा क्वाथ्यद्रव्यस्य पलञ्च प्रस्थद्वयेऽम्भासि अर्द्धशृतीकृत्य वारिप्रस्थं वस्त्रेण च्छानयित्वा नातिसान्द्रां नातिस्वच्छां यवागूं साधयेत् (कणा शुण्ठ्योः प्रत्येकं कर्षार्द्धं कृत्वा पृथग्योगोऽयमिति कश्चित् (ननु यद्येवं भेषजं क्वाथः सामान्याधिक्ये पतति तत् किमर्थं कर्षमात्रं "ततो द्रव्यं साधयेत् प्रास्थिकेम्भासि इति षडङ्गपरिभाषा" अत आह, षडङ्गपरिभाषायां प्राय इति प्राचुर्येण प्रचुरस्थले षडङ्गपरिभाषैव पेयादिसम्मता पेयादिषु कीर्त्तिता। पेयादिषु मन्यत इति यावत्। अयमर्थः प्रायेण षडङ्गपरिभाषैव व्यवहार इति षडङ्गपरिभाषोक्ता । प्रबलाग्निपुरूषे तु बहुभक्तारि स्तोकतोयेन यवागूर्न सिद्ध्यति युक्त्या क्वाथप्राबल्यं केशाकृष्टया पतितामिति सर्वमवदातम्। निश्चलकारेण तु पलमत्र सौश्रुतमित्यवधेयमिति व्याख्यातम् । अत्र नारायणदासेन व्याख्यातम् । कणाशुंठ्योः कर्षार्द्धं वेति तीक्ष्णद्रव्योपलक्षणं कल्कद्रव्यस्य वा पलमिति, मृदुद्रव्योपलक्षणं मृदुकठिनयोर्युक्त्या कर्षद्वयमिति अपरा-

नीति ये यवाग्वादयः षडङ्गपरिभाषया सिद्धाः न तदर्थेयं परिभाषा, किन्तु तदितरार्थेयमित्यर्थः । आकृतिपूर्वमत्र कर्षमात्रं द्रव्यमुक्तम् । अत्र तु कर्षाधिकमपि पूर्वत्र तु प्रस्थमात्रं जलमुक्तम् । अत्र प्रबलाभिबलपुरुषार्थं बहुयवागूसाधने प्रस्थाधिकमपि गृह्यते, क्वचित् प्रस्थन्यूनेऽपि यूषः साध्यते पूर्वमर्द्धशृतजलमुक्तम्, अत्र तु क्वचित् पादावशिष्टमपि मांसरसे साध्यमाने पानयोग्यावशिष्ट इति युक्तिशब्दार्थः । तदेतद्युक्तं भवति । यवागूः षड्गुणे तोये प्रस्थे प्रस्थाधिकेऽपि वा - रसेन पाके मांसस्य सुसिद्ध्यति हि यावता । अष्टशिष्टो भवेद्यूषः क्वचित्पादावशेषतः । अष्टादशगुणे तोये यूषः शार्ङ्गधरेरितः॥इति॥गुरवस्त्वाहुः।परिभाषेयं पानीयसाधनविषयिणी चक्रपाणिदत्तेन पानीयसाधनप्रकरणे षडङ्गपानीय-त्र्यङ्गपानीयानन्तरं पिप्पलीपानीयं लिखितं कणाशुण्ठ्योः कर्षार्धं वारिप्रस्थेन साध्यम् । ननु अत्र कल्कद्रव्यस्य वापलमिति कथमुक्तमत आह । नारायणान्तरङ्गः मृदुद्रव्य उपलक्षणमिति । यद्यपि पिप्पलीये पानीये आनुषङ्गिकत्वाद्युक्त्या परान् यूषान् पेयादीन् वा धात्वपेक्षया साधयेत् । तदा तण्डुलादीनां पलं कल्कीकृत्य वारिप्रस्थेनार्द्धशृतेन साध्यम्, अतः षडङ्गपरिभाषैव प्रायः पेयादिसम्मतेत्युक्त्वा पश्चादेषा लिखिता, पेयादयस्तु षडङ्गपीरभाषया सर्वत्र साधनीयाः, प्रायःशब्दात् प्रचुरस्थले षडङ्गपरिभाषा सम्मता तदितरार्थेयमिति ।

भा०–पीपल और सोंठ बराबर मिली हुई १ तोला, और क्वाथद्रव्य (चावलादि) आठ तोला लेकर चार- सेर जलमें पकावै । जब दो सेर रहजाय उतारकर कपडें- में छान यवागू (अति गाढा और अत्यन्त स्वच्छ न होवै) पाक करे (किसीके मतसे १ तो० पीपल, १ तो०सोंठ इन दोनोंको दो तोलाले) ।

यहां पर यह प्रश्न होसकता है कि, यदि औषधि और क्वाथद्रव्यकी इसप्रकार साधारण अधिकाई हो, तो ४ सेर जलमें दो तोला औषधिको औटानेकी जो षडङ्गपरिभाषा लिखीहै, तिसका तात्पर्य क्या है इसका उत्तर यहीहै कि, यदि बहुत पेयादि बनानाहो तो षडङ्ग जल बनानेके विधानका तिस्से पेयादि बनावै ।

प्रबलाग्नियुक्त, बहुत भोजन करने वालेके लिये जो यवागूका पाक करनाहो तो वह थोडे जलसे नहीं होता, वस चावलोंके परिमाणके अनुसार क्वाथ और क्वाथके परिमाणानुसार औषधिभी अधिक डाले । जैसे किसीके केश खेचनेसे तिसके साथ उसके समस्त अंगप्रत्यंग खींचते हैं, यहभी वैसेहीहै ।

निश्चलकारने व्याख्या करीहै कि, यहां पर सुश्रुतमें कहा हुआ पल (पांच रत्तीका मान) ग्रहण करना चाहिये नारायणदासने व्याख्या कीहै की पीपल और सोंठ केवल उपलक्षण है, समस्त तीक्ष्ण द्रव्योंको अर्द्धकर्ष (१ तोला) के परिमाणसे ग्रहणकरे । समस्त मृदु द्रव्य एकपल (८ तोला) और मृदु व कठिन मिश्रित द्रव्य दो कर्ष ४ तोला ग्रहणकरे । षडङ्गकी परिभाषाके अनुसार जो यवागू आदि बनतेहैं, तिन स्थानोंके लिये यह परिभाषा नहींहै तिसके सिवाय और सब स्थलोंमें इस परिभाषाके अनुसार यवागूआदि तैयार होतेहैं ॥ चक्रपाणिदत्त और शार्ङ्गधर का मतभी यहीहै । पहले लिखेहुए मतसे प्रबलाग्नि मध्यमाग्नि और हीनाग्निवालोंको विचार कर, यवागू पेया, और जूषादिकी औषधि, जल और मात्राका विधान करदे । यवागू, मंड, और पेयादिके सिद्ध करना, और तिनके लक्षण आगे लिखे जातेहैं ।

यवागूसाधने तण्डुलप्रकारमाह।

यवागूमुचिताद्भक्ताच्चतुर्भागकृतां[1]वदेत् ॥५८॥

अर्थ-यवागुकी मात्रा स्वभावसेही जितने चावल खानेका अभ्यासहो, तिस्से चौथाई (कूटाहुआ चावल) चावलसे यवागू पाककरे।

अन्नादिसाधने जलपरिमाणमाह।

अन्नंपंचगुणेसाध्यंविलेपीचचतुर्गुणे।
मण्डश्चतुर्दशगुणेयवागूःषड्गुणेऽम्भसि ॥ ५९ ॥

अर्थ-अन्नादिसाधना-जितने चावलहों उतनेसे पंचगुणे जलमें अन्न पकावै, ऐसेही विलेपी चौगुणे जलमें, मांड १४ गुण जलमें और पेया छः गुणे जलमें पकावै ॥ ५९ ॥

मण्डादिलक्षणमाह।

सिक्थकैरहितोमण्डःपेयासिक्थसमान्विता।
यवागूर्बहुसिक्थास्याद्विलेपीविरलद्रवा ॥ ६० ॥

अर्थ-मंडादिके लक्षण-जिसमें जराभी कण नहो तिसको मंड कहतेहैं, जिसमें थोडा कणहो तिसको पेया कहतेहैं, जिसमें कण अधिकहो और तरलता थोडीहो, तिसको विलेपी कहतेहैं ॥ ६० ॥

अन्यच्च।

यवागूःषड्गुणेतोयेसिद्धास्यात्कृशराघना।
तण्डुलैर्मुद्गमाषैश्चतिलैर्वासाधिताहिसा ॥ ६१॥

अर्थ-और प्रकार कहा जाता है,-छैः गुणे जलसे यवागू पाक कियाजाय, तो वह खिचडीकी समान होजाताहै

---

१ उचिततण्डुलाच्चतुर्भागैकभागमानं क्षुद्रिततण्डुलमाहुस्तैः कृतां यवागूं वदेदित्यर्थः, जाऊ इति लोके।

सो चावल, मूंग, उरद और तिल इनमेंसे चाहे जिस द्रव्यसे तैयार होसकताहै ॥ ६१ ॥

यवागूग्राहिणीबल्यातर्पणीवातनाशिनी ।
विलेपीचघनासिक्थैःसिद्धानीरेचतुर्गुणे ।
विलेपीतर्पणीहृद्यामधुरापित्तनाशिनी ॥ ६२ ॥

अर्थ—यवागू—धारक, बलकारक, तृप्तिकारक और वायुनाशक है। विलेपी चौगुणे जलमें पकावै । सो घना और कणदार रहै । विलेपी—तृप्तिकारी, हृदयकारी, मधुर-रससे युक्त और पित्तका नाश करनेवालीहै ॥ ६२ ॥

द्रवाधिकाघनासिक्थाचतुर्दशगुणेजले ।
सिद्धापेयाबुधैर्ज्ञेयायूषःकिंचिद्घनःस्मृतः ॥ ६३ ॥
पेयालघुतराज्ञेयाग्राहिणीधातुपुष्टिदा ।
यूषोबल्यःस्मृतःकण्ठ्योलघुपाकःकफापहः ६४॥

अर्थ—चौदहगुने जलमें पकाकर तरल और कणरहते हुए जिसको उतार लियाजाय उसको यूष कहते हैं। पेया-पाकमें हलकी, धारक और धातुको पुष्ट करनेवाली है। जूस बल-कारी, कंठका साफ करनेवाला, पाकमें हलका, और कफ-नाशक है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

जलेचतुर्दशगुणेतण्डुलानांचतुःपलम् ।
विपचेत्स्रावयेन्मण्डःसभक्तोमधुरोलघुः ॥ ६५ ॥
नीरेचतुर्दशगुणेसिद्धोमण्डस्त्वासिक्थकः[1] ॥ ६६ ॥

अर्थ- ४पल (३२ तो०) चावल कूटकर चौदह गुण जल-

---

१ तण्डुलानामिति । क्षुद्रिततण्डुलानामित्यर्थः । स्रावयेदिति वस्त्रादिना चालयेत् । असिक्थ इति सिक्थकरहित इत्यर्थः । अन्नादि-रहितसिक्थकः कुटीतिलोके ।

से पाककरके कपडेसे छानले। सीथ छोडदे। तिसको मांड-कहते हैं। मांड मधुररसयुक्त और पाकमें हलका है॥६५॥६६

मांसरससाधनविधानमाह।

द्रव्यतोद्विगुणंमांसंसर्वतोद्विगुणंपयः।
पादस्थंसंस्कृतंह्येषःषडङ्गोयूषउच्यते॥ ६७॥

अर्थ–मांसरसका साधन करनेमें और द्रव्य (दालादि) जितनेहों उनसे दूना मांस ग्रहण करे। सबका वजन जितनाहो उस्से ८ गुण जलमें पकावै। चतुर्थांश रहै तब उतारकर छानले। इसको षडङ्ग जूस कहते हैं॥ ६७॥

पलानिद्वादशप्रस्थेघनेऽथतनुकेतुषट्¹।
मांसस्यवटकंकुर्यात्पलमच्छतरेरसे॥ ६८॥

अर्थ–घनमांसरस बनानाहो तो १२ पल(९६तो०)मांस ४ सेर जलमें सिद्धकरे। मांसका पतलारस करना हो तो ६ पल (४८ तो०) मांस, ४ सेर पानीके साथ और अच्छतर मांस-रस बनानाहो तो १ पल (८ तो०) मांस चारसेर जलके साथ सिद्धकरे। चौथाई रहै तब उतारले। अच्छतर मांस-का रस बनानाहो तो पहले एक पल मांसको पत्थरपर पीसे फिर गोलियें बनाय घीमें भूनलेना चाहिये। क्यों कि थोडा-सा मांस बहुतसे जलके साथ सिद्धकिया जाय तो उसका गल-जाना संभव है॥ ६८॥

---

१ अस्यार्थः। घने मांसरसे कर्त्तव्ये प्रस्थे जले मांसस्य द्वादशपलं दत्त्वा पक्तव्यम्। तदनु तनुके रसे कर्त्तव्ये मांसस्य षट्पलं पानीयं प्रस्थमेव दातव्यम्। अच्छतरे रसे कर्त्तव्ये प्रस्थे जले मांसस्य पलं दत्त्वा तन्मांसं पिष्ट्वा प्रस्थार्धशेषस्थितजले पक्त्वा अनुरूपं स्थाप्यं वस्त्रेण छानयित्वा यूषः कार्यः। मांसस्य वटकं कुर्यादिति स्विन्नमांसस्य पलं पिष्ट्वा वटकान् विधाय घृतादौ भर्ज्जयित्वा अच्छतररसं साध्य-मित्यर्थः। अन्यथा मांसपलस्यातिद्रवपाके विलयनं स्यादित्य-च्छतरे रसे वटकं कुर्यादित्याह।

लाक्षारससाधनमाह ।

षड्गुणेनाम्भसालाक्षादोलायंत्रेह्युपस्थिता ।
त्रिसप्तधापरिस्राव्यालाक्षारसमिदंविदुः ॥ ६९ ॥

अर्थ–लाखका जितना वजनहो, उस्से छैगुण जलके साथ दोलायंत्रमें पकाकर इक्कीसवार पसालेवै । पंडितलोग इसको ही लाक्षारस कहते हैं ॥ ६९ ॥

प्रक्षेपविधिमाह ।

प्रक्षेपःपादिकःक्वाथ्यात्स्नेहेकल्कसमोमतः ॥
परिभाषामिमामन्येप्रक्षेपेऽप्यूचिरेयथा[1] ॥ ७० ॥

अर्थ––क्वाथमें जिस वस्तुका (मधु चीनी आदिका) प्रक्षेप देनाहो, तिसका परिमाण क्वाथ्यका चौथा अंशहै और घी तैलादि स्नेह द्रव्यमें जो प्रक्षेप देना होताहै, तिसका परिमाण कल्ककी समान है ॥ ७० ॥

चूर्णादीनांभक्षणप्रकारमाह ।

कर्षश्चूर्णस्यकल्कस्यगुडिकानाञ्चसर्वशः ।
द्रवशुक्त्यासलेढव्यःपातव्यश्चचतुर्द्रवः ॥ ७१ ॥
मात्राक्षौद्रघृतादीनांस्नेहक्वाथेषुचूर्णवत् ।

अर्थ–चूर्ण, कल्क, गुडिका और वटिका आदि एककर्ष (२ तोला) के परिमाणसे प्रयोगकरे । लेहन करके सेवन करना हो तो औषधिसे दूने द्रव (तरल) पदार्थके साथ और

१ स्नेहे पातव्यघृतादिसाधने तैलादिसाधने वा प्रक्षेपः कल्कसमो मतः जायतेस्म इत्यर्थः । शर्करामधुप्रभृतीनामिति क्वाथ्यादिति पाचनादिद्रव्यात् कर्षात् प्रक्षेपः पादिकाश्चतुर्माषको ज्ञेय इति चक्रपाणिदत्त सम्मतः। अन्येऽपि वृद्धादय इमां परिभाषां प्रक्षेपेऽपि ऊचिरे परिभाषयांबभूवुः अतएव चक्रदत्तोऽपि तत्स्वीकृत्य स्वसंग्रहे लिखितवान् ।
यह चक्रदत्तका मत है । पाचनादिके प्रक्षेपका परिमाण अलग लिखा है ।

पान करके सेवन करना हो, तो औषधिसे चौगुने द्रवपदार्थके साथ प्रयोग करना चाहिये । स्नेह क्वाथमें शहद और घृतादिके प्रक्षेप देनेंकी मात्रा चूर्णादिकी समान एककर्ष (२ तोला) है[1] ॥ ७१ ॥

क्वाथेनचूर्णपानंयत्तत्रक्वाथप्रधानता ।
प्रवर्त्ततेनतेनात्रचूर्णापेक्षश्चतुर्द्रवैः[2] ॥ ७२ ॥

अर्थ–चूर्णके साथ क्वाथका प्रयोग करनाहो (चूर्णकी

---

१ चूर्ण कल्को गुड़िका, चकारात् वटिकाच यद्युपयुज्यते च तर्हि सर्वत्र वक्ष्यमाणविशेषं विना तोलकद्वयमुपयुज्यते । स चूर्णादेः कर्षः यदि लेढव्यः तर्हि द्रवशुक्त्या माक्षिकप्रभृतीनां अर्द्धपलेन तोलकचतुष्टयेनेति यावत् । चूर्णस्य तथा लेढुंसुखत्वात् पातव्यश्चेत्तदा चतुर्द्रव इति माक्षिकादीनां चतुर्गुणेन पलेनेति शेषः । तथा सति चूर्णस्य पातुं सुखत्वादित्यस्य प्रधानार्थः सांप्रदायिकैश्चक्रदत्तादिभिर्मन्यते । अन्येतु प्रक्षेप्येनामन्यंते । तथा हि तेषामयमर्थः।यत्र चूर्णस्य कल्कस्य गुडिकानाञ्च भेषजानामुपयोगस्तत्र कर्षप्रक्षेपो दातव्यः। शेषार्थः सुगमः। मात्राक्षौद्रघृतादीनामिति क्षौद्रप्रभृतीनां मधुघृतगुडानां स्नेहे क्वाथे वा प्रक्षेपश्चूर्णवत् । चूर्णस्य उक्तः तर्हि यत्र घृतादयः प्रक्षेपास्तथैषां घृतक्षौद्रादीनां कर्ष इत्यर्थः । एतन्न रास्नादिक्वाथस्य कर्षस्य प्रक्षेप्यं मिलितो शर्करामधुनोः पादिकं माषचतुष्टयं प्रक्षेप्यमिति साम्प्रदायिकमतम् । यदुक्तमन्यत्र । 'प्रक्षेपः पादिकः क्वाथ्यात् स्नेहे कल्कसमोमतः ' इति । अन्येतु शर्करामधुनोः प्रत्येकं द्रंक्षणं कृत्वा मिलित्वा द्रंक्षणद्वयं कर्षं दातव्यमाहुः–'शाणौ द्वौ द्रंक्षणं विद्यात् तौ द्वौ कर्ष उदुम्बरः । परमव्याहतमनुमतमेवेति न्यायात् । चक्रदत्तानुमतमेतत् । किन्तु सर्वत्र नैवम् । अपितु क्वचित् किञ्चिद्दोषवयोवह्न्याद्यपेक्षया इत्यवधेयम् । वस्तुतस्तु वातज्वरार्ते रास्नादिकषाये शर्करामाषकत्रयं मधुमाषैकं प्रक्षेप्तुमर्हति यथा चैतत् । तथा–'षोडशाष्टचतुर्भागं वाते पित्ते कफे क्रमात् । क्षौद्रं कषाये दातव्यं विपरीतां तु शर्करा' इति संहितोपाये स्वयमेव चक्रेण व्याख्यातम् । इदं तु पादिकः प्रक्षेपात् क्रियासिद्धिरित्यभिप्रायेण तन्त्राभिहितं हेयमन्यत् । किञ्च चूर्णवदिति प्रक्षेप्यं क्षौद्रघृतादीनामपि चूर्ण इव चूर्णस्य जरणादेर्यथा शाणः प्रक्षेपस्तथा क्षौद्रघृतादीनामपि शाणो देय इति गुरवः। प्रक्षेपपादिकः क्वाथ्यादिति वाक्यस्य एकवाक्यत्वान्मनोहरम् ।

२ यत्र चूर्णपानं यौगिकं तत्र चूर्णस्य प्राधान्यात् कर्षमानं त-

प्रधानताके हेतु) तो चूर्णसे चौगुना क्वाथ लेकर प्रयोग करे; परन्तु क्वाथके साथ चूर्ण प्रयोगके सम्बन्धमें ऐसा नियम (चूर्णसे चौगुना) युक्तियुक्त नहीं है । यह विधि केवल चूर्ण औषध प्रयोगके सम्बन्धमें जानना । जहांपर कषायपानकी विधि होगी और कषायकी प्रधानता दिखाई देगी, तहांपर उमर और बलाबलका विचार करके चतुर वैद्य कषाय आरचूर्णकी मात्राको कल्पित करे ॥ ७२ ॥

मतान्तरमाह-द्रव्यविशेषस्य ।

माषिकंहिंगुसिन्धूत्थंजरणाद्यास्तुशानिकाः ।
सितोपलागुणक्षौद्रंसामान्यांशप्रकल्पनाः ॥७३ ॥

अर्थ-दूसरे मतमें कोई २ कहते हैं कि हींग और सैंधा (तीक्ष्ण होनेंसे) एक माषा (पराति) जीरा आदि एकशान (२ तोला) प्रक्षेपदेवै और चीनीगुड, मधु आदिका प्रक्षेप देनाहो तो गुरुके उपदेश और साधारण वचनके अनुसार प्रबलाग्नि, मध्यमाग्नि और क्षीणाग्नियुक्त पुरुषको क्रमानुसार एकपल (८ तोले) तीन कर्ष (६ तो०) और अर्द्धपल (४ तो०) (सुश्रुतके मानसे) की मात्राका प्रयोग करे ॥७३॥

दोषभेदेमधुशर्करयोःप्रक्षेपमानमाह ।

षोडशाष्टचतुर्भागंवातापित्तकफार्तिषु ।

स्मात् क्वाथ्यं चतुर्गुणं तस्य क्वाथस्य तत्र प्राधान्यं यत्र क्वाथेन सह प्रक्षेप्यस्य चूर्णस्य पानं तत्र क्वाथस्य प्रधानत्वाच्चूर्णापेक्षी चतुर्द्रवः चतुर्गुणत्वं द्रवस्य न प्रवर्त्तत इति ।

१ हिङ्गुसैन्धवयोः प्रक्षेपयोस्तैक्ष्ण्यान्माषिकं, जीरकाद्याः पुनः क्वाथ्यात् पादिका एव । सितोपलासिताशर्करादीनाञ्च सामान्यानां सामान्यवाक्यानां उत्तमस्य पलं मात्रा इत्यादीनामिव अंशांशकल्पनाः कार्या इति सामान्यांशम् । पलत्रिकर्षार्द्धपलरूपं सौश्रुतमित्यर्थः । सामान्यमिति प्रक्षेपः पादिकः क्वाथ्यादिति तेन पादिका इति गुरवः ।

क्षौद्रंकषायेदातव्यंविपरीतातुशर्करा[1] ॥ ७४ ॥

अर्थ-क्वाथमें मधुका प्रक्षेप देना हो, तो वायुकी अधिकतामें क्वाथके सोलहवें हिस्सेका एक हिस्सा, पित्तकी अधिकाईमें क्वाथका आठवाँ भाग, कफकी अधिकतामें क्वाथका चौथा भाग मधुप्रक्षेपदे । चीनीका प्रक्षेप इस्से विपरीत है । अर्थात् वायुकी आधिकतामें क्वाथसे चौथाई, पित्तकी अधितामें आठवां भाग और कफकी अधिकतामें क्वाथका सोलहवां भाग चीनीका क्वाथमें प्रक्षेपदे ॥ ७४ ॥

क्षीरादिपाकमाह ।

द्रव्यादष्टगुणंक्षीरंक्षीरात्तोयंचतुर्गुणम् ।
क्षीरावशेषःकर्त्तव्यःक्षीरपाकेत्वयंविधिः ॥ ७५ ॥
क्षीरमस्त्वारनालानांपाकोनास्तिविनाम्भसा ।
सम्यक्पाकंनगच्छंतितस्मात्तोयंचतुर्गुणम्[2] ॥७६॥

अर्थ-जिस द्रव्यके साथ दूध पकाना हो, तिस्से आठ गुण दूधसे चौगुना जल डालकर पकावै । जब देखे कि जलका अंश जल गया केवल दूध बाकी है, तब उतारले । दूध, दही मस्तु और कांजी इनका पाक, विना जलके नहीं होता । इसकारण भली भांतिसे पाक करनेको चौगुणे

---

१ षोडशाष्टचतुर्भागमिति वायौ पित्तेच कफेच कषायपाने क्षौद्रं प्रक्षेप्यं । वायौ षोडशांशं, पित्ते अष्टांशं, कफे चतुर्थांशं । शर्करायास्तु वायौ चतुर्थांशं,पित्ते अष्टमांशं, कफे षोडशांशमिति विपरीतेति वचनसामर्थ्यात् ।

२ एतत्तु वचनं केवलक्षीरपक्वपाचनादौ क्षीरंपञ्चमूल्याद्यामित्यर्थः। नान्यत्र तैलघृतादिपाके तत्र द्रव्यान्तरमस्त्वेव केवलतैलादिपाके चतुर्गुणं क्षीरमेवास्ति न द्रव्यान्तरमस्ति अत्र कण्ठोक्तत्वात् परिभाषा न प्रवर्त्तते । यथा ‘ अव्यक्तानुक्तलेशोक्तसन्दिग्धार्थप्रकाशिका ’ इत्यभिप्रेत्य व्याख्येयमिति गुरवः ।

जलके साथ पाक करे। परन्तु यह नियम केवल क्षीरमें पकेहुए पाचनादि (क्षीरपंचमूल्यादिक्काथ) के लिये है । घृत-तेल आदिके साथ दुग्धपाक करना हो तो वहांपर यह नियम ठीक नहीं है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

परिभाषाप्रदीपसंग्रहका द्वितीयखण्ड समाप्त हुआ.

अथ तृतीयःखण्डः ।

अथस्नेहसाधनेक्काथ्यजलादेःपरिमाणमाह ।

क्काथ्याच्चतुर्गुणंवारिपादस्थंस्याच्चतुर्गुणात् ।
स्नेहात्स्नेहसमंक्षीरंकल्कस्तुस्नेहपादिकः ॥
चतुर्गुणन्त्वष्टगुणंद्रव्यंद्वैगुण्यतोभवेत् ॥ १ ॥

अर्थ–क्काथद्रव्यको चौगुने जलके साथ पाक करे, चौथा अंश बच रहने पर उतारकर छानले । फिर स्नेहके (घृत-तेलादिके) बराबर दूध और चतुर्थांश कल्कके साथ स्नेह-पाक करे। ऊपर कहे हुए को " चतुर्गुण " शब्दके स्थानमें आठ गुण जलदान करे । क्यों कि द्रवद्रव्यको दूना लेना चाहिये ॥ १ ॥

अपिच ।

अत्रद्रवान्तरानुक्तौक्षीरमेवचतुर्गुणम् ।
द्रव्यान्तरेणयोगेहिक्षीरंस्नेहसमंभवेत् ॥ २ ॥

अर्थ–स्नेहपाक करनेमें और कोई द्रव (जलादि) पदार्थ न कहाहो और केवल दूधसेही पाक सिद्ध करना हो, तो स्नेहसे चौगुना दूध देकर पाक करे । और जो कोई और द्रवद्रव्य कहाहो तो स्नेहके बराबर दुग्धसे पाक करे ॥ २ ॥

अन्यच्च ।

जलमष्टगुणंक्काथ्यात्क्काथश्चजलपादिकम् ।
क्काथाच्चपादिकंस्नेहःस्नेहात्कल्कस्तुपादिकः ॥ ३॥

अर्थ–आठ गुण जलमें क्काथ्यद्रव्य पकायकर जब चौथाई अंश बच रहे तो उतार कर छानले। फिर क्काथसे चौथाई स्नेह और स्नेहसे चौथाई कल्कसे पाक सिद्ध करै॥ ३॥

पंचप्रभृतियत्रस्युर्द्रवाणिस्नेहसंविधौ ।
तत्रस्नेहसमान्याहुरर्वाकचस्याच्चतुर्गुणम्[1] ॥ ४ ॥

अर्थ–यदि स्नेहको पांच या इस्से अधिक द्रवद्रव्योंके साथ पाक करनाहो, तो यह प्रत्येक द्रवद्रव्य स्नेहकी बरावर देना चाहिये । परन्तु यदि एकसे चार तक द्रवद्रव्यकरके पाक करनेकी विधिहो, तो प्रत्येक द्रव्य स्नेहसे चौगुना लेना चाहिये ४

अन्यच्च ।

एकद्वित्रिद्रवद्रव्यैःकुर्यात्स्नेहाच्चतुर्गुणम् ।
क्षीरंस्नेहसमंदेयंचतुर्भिश्चचतुर्गुणम् ॥ ५ ॥

अर्थ–एक, दो या, तीन द्रवद्रव्यके साथ स्नेहपाक कर-

१ अत्र स्नेहादेर्यत्र यशोधरटीकाव्याख्यामाह अत्रमिलित्वैव चातुर्गुण्यं युक्तमेव एकादिचतुर्द्रवपर्यन्तम् अत्रानुपपत्तिरेषा । द्रवचतुष्टयविषयेण चरितार्थमेव तद्वचनम् । तत्र द्रवचतुष्टयसमवतेति नैवश्चक्षतिः तस्मादेकेनापि चातुर्गुण्यमित्यादि चतुःसममित्यन्तयोः परिभाषया द्रवचतुष्टयविषये तावत् । यत्र स्नेहादेः पाकविधौ द्रवानि पञ्चप्रभृतिषट्सप्ताष्टाधिकतराणि च देयानि स्युः । तत्र स्नेहसमानानि देयानि । अर्वागिति पञ्चशब्दस्य अर्वाक् पंचमादित्यर्थः।तेन एकादि चतुःपर्यंतं द्रवाणां च तुर्गुण्यं स्नेहभागोपक्षया इति । एक, द्वि, त्रि, द्रवयोगेऽपि मिलित्वा चातुर्गुण्यम् । चतुर्षु द्रवेषु तु प्रत्येकं स्नेहस्य भागापेक्षया चातुर्गुण्यमित्येके वदन्ति । एतेन चतुर्णां चातुर्गुण्यम् । त्रयाणामपि द्वाभ्यामपि एकस्यापि चातुर्गुण्यम् । पंचापेक्षया एषामकादिचतुर्णां प्रति चार्वाक्त्वमित्यभिप्रायः।

नांहो, तो प्रत्येक द्रव्यको स्नेहसे चौगुना लेना चाहिये, दूध स्नेहकी बराबरले. और चार द्रवद्रव्यसे पाक करनाहो तो उनके बराबर भागमें मिले हुए स्नेहसे चौगुना लेना योग्य है ॥ ५ ॥

कल्काच्चतुर्गुणंस्नेहःस्नेहात्तोयंचतुर्गुणम् ।
क्वाथ्याच्चतुर्गुणंवारिक्वाथ्यःक्वाथसमोभवेत् ॥ ६ ॥

अर्थ–कल्कसे चौगुना स्नेह, स्नेहसे चौगुना जल, क्वाथ्यद्रव्यके वजनसे चौगुना जल और क्वाथ्य द्रव्य क्वाथकी (जितना क्वाथ स्नेहमें डालनाहो) समान वजनसे देना ॥ ६ ॥

जलस्नेहौषधानाञ्चप्रमाणंयत्रनेरितम् ।
पादःस्यादौषधंस्नेहात्स्नेहात्तोयंचतुर्गुणम् ॥ ७॥

अर्थ--जल, स्नेह और औषधिका परिमाण नकहाहो तो स्नेहकी चौथाई औषध और स्नेहसे चौगुना जल प्रदानकरे॥७

वृषादिकुसुमात्कल्कःकेवलःस्नेहसिद्धये ।
यत्रोक्तःस्नेहपादार्द्धःस्नेहकार्यमनीषिभिः ॥ ८॥

अर्थ–जो स्नेहमें केवल वासक आदिके फूलका कल्क देनेकी विधिहो तो यह कल्क स्नेहका आठवां भाग ग्रहण करे॥८

अन्यच्च ।

स्नेहःसिद्ध्यतिशुद्धाम्बुनिःक्वाथस्वरसैःक्रमात् ।
कल्कस्ययोजयेदंशंचतुर्थंषष्ठमष्टमम् ॥ ९ ॥

अर्थ–जल अथवा क्वाथ और स्वरससे स्नेहपाक करनेकी विधिहो, तो वहां पर कल्क क्रमानुसार चतुर्थांश, षष्ठांश और अष्टमांश रक्खै । अर्थात् केवल जलसे स्नेहको सिद्ध करनाहो तो स्नेहसे चौथाई कल्कदे । क्वाथसे पाक करनाहो तो छठा

अंश और स्वरससे स्नेहपाक करनाहो तो स्नेहका आठवां हिस्सा कल्कप्रदान करे ॥ ९ ॥

स्वरसक्षीरमाङ्गल्यैःपाकोयत्रेरितःक्वचित् ।
जलंचतुर्गुणंतत्रवीर्याधानार्थमावपेत् ॥ १० ॥
नमुञ्चतिरसंद्रव्यंक्षीरादिभिरुपस्कृतम् ।
सम्यक्पाकोनजायेततस्मात्तोयंचतुर्गुणम् ॥ ११॥

अर्थ– "स्वरसक्षीरमाङ्गल्यैरत्रोपलक्षणेतृतीया" माङ्गल्यं दधि स्वरस,दूध और दहीसे किसी स्थलमें पाककरनेकी विधि हो तो वहांपर चौगुना जल डाले। कारण कि केवल दही दूध आदि करके स्नेहका पाक भलीभांतिसे नहीं हो सकता। इस कारण औषधिके वीर्यवान होनेके लिये स्नेहमें चौगुना जल डालै ॥ १० ॥ ११ ॥

---

१ विष्णुतैलपाके केवलं दुग्धचतुर्गुणः पाकस्तत्र वीर्याधानार्थं जलं चतुर्गुणं केचिदिच्छान्ति तदसत् । नायं क्षीरपाकः किन्तु क्षीर चतुर्गुणे तैलस्य पाकः।नेदंतैलं द्रवप्रधानम्, एतदंगधरं तैलमिति ग्रन्थान्तरे पाठात् अंगधरं कल्कं प्रधानामित्यर्थः । अथवा पाको द्विविधः क्षीरस्य क्षीरकरणकः । क्षीरकर्म्मकः । अत्र पुनः क्षीरकरणकः पाकः । क्षीरकर्मकः क्षीरपाकः "द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरात्तोयं चतुर्गुणम्" इति वचनात् । अत्र चतुर्गुणं द्रव्यं विना सम्यक् पाको न स्यादित्यर्थः । यदि तु विष्णुतैले जलं चतुर्गुणं ददाति तदा द्रवबाहुल्यदोषः स्यात् चतुर्गुणदुग्धे नैव फलसिद्धेः। गुरवस्त्वाहुः । परिभाषा तु कंठोक्तं बिना इति शेषः ॥ अर्थात् विष्णुतैलको चौगुने दूधसे पाक करनेकी विधि है । वीर्य्यवन्त करनेके लिये कोई २ उसमें चौगुना जल डालनेकी विधि कहते हैं। परन्तु यह विधि ठीक नहीं है । क्योंकि यह क्षीरपाक नहीं है, चौगुने दूध करके तैलपाककी विधिके अनुसार पाक करना होगा । यद्यपि विष्णुतैल चौगुने जलसे पाक किया जाता है, तो भी वह उपकारी नहीं होता. वरन द्रव्य–बहुतापतके दोषसे अपकारी होजाता है, अतएव गुरुउपदेशके अनुसार जैसा प्रचलित है, वैसाही पाक सिद्ध करे ॥

स्नेहपाकविधौयत्रक्षीरमेकन्तुकथ्यते ।
तोयादीनामनिर्देशेक्षीरमेवचतुर्गुणम् ॥ १२ ॥
" एतदेवसमाधानमत्युचितम्" ।
अकल्कोऽपिभवेत्स्नेहोयःसाध्यःकेवलेद्रवे ॥ १३॥

अर्थ–जहांपर स्नेह पाकमें जलादिका देना नहीं लिखा है और केवल दूधका देना लिखा है वहांपर चौगुने जलसे स्नेहादिका पाक सिद्धकरे । और जिन स्नेहोंकी विना कल्कके केवल द्रवद्रव्यसे पाक करनेकी विधि है तिनकोभी चौगुने जलसे पाककरे ॥ १२ ॥ १३ ॥

स्नेहपाकविधौयत्रप्रमाणंनेरितंक्वचित् ।
स्नेहस्यकुडवंतत्रपचेत्कल्कपलेनतु ॥ १४ ॥

अर्थ–स्नेहका परिमाण न लिखाहो तहां आधसेर स्नेह, एक पल (८ तो०) कल्क ग्रहण करे ।

मानानुक्तौघृतेतैलेप्रस्थमाहुश्चिकित्सकाः ॥ १५ ॥

अर्थ–जो घृत तेल आदिका परिमाण न लिखाहो,तो चिकित्सकलोग एकप्रस्थ (४ सेर) ग्रहण करें ॥ १५ ॥

द्विगुणंत्रिगुणंवापिबहुमात्राच्चपादिकम् ।
योगंयदिपचेन्मूढोहीनवीर्य्यंभवेत्तदा ॥ १६ ॥

अर्थ–यदि अज्ञानताके वश स्नेहके परिमाणसे, स्नेह दूना या तिगुना ग्रहण किया जाय, अथवा अधिक मात्रा लिखी रहने पर तिसका चौथाईआदि अंश कमकरके स्नेहादिका पाक किया जाय तो वह हीनवीर्य्य होताहै; अतएव घृत तेलका जितना वजन कहाहो, उतना पूर्ण मात्रासे तैयार करे ॥ १६ ॥

तुलाद्रव्येजलेद्रोणोद्रोणेद्रव्यतुलामता।
अनुक्तेद्रवकार्येतुसर्वत्रसलिलंमतम् ॥ १७ ॥

अर्थ-द्रव्यका (औषधिका) परिमाण एक तुला होनेपर यदि जलका परिमाण न कहाहो, तो एक द्रोण जल प्रदान करे। जल एक द्रोण (६४ सेर) कहाहो और द्रव्यका परिमाण न होवै तो द्रव्य (औषध) एक तुला ग्रहण करे। जहां पर द्रव कहाहै, परन्तु साफ यह नहीं लिखा कि क्या द्रव है, तो वहांपर सब जगह जलही प्रदान करे ॥ १७ ॥

अन्येप्याहुः।

अङ्गेऽप्यनुक्तेविहितन्तुमूलंभागेऽप्यनुक्तेसमताविधेया॥
द्रवेऽप्यनुक्तेजलमेवदेयंकालेऽप्यनुक्तेदिवसस्यपूर्वम् ॥

अर्थ-द्रव्यका अंग न कहा होतो मूल, भाग न कहाहो तो समानभाग, द्रवद्रव्य न कहाहो तो जल ग्रहणकरे और काल न कहाहो तो प्रातःकालको समझना चाहिये ॥ १८ ॥

प्रसारण्यादिनिर्दिष्टंशतमेकंपृथक्पृथक्।
जलद्रोणेनचैकैकंसाधयेच्छ्लक्ष्णकुट्टितम् ॥ १९ ॥
क्वाथ्यद्रव्यस्यबाहुल्यादुदकंस्वल्पमेवतु।
सम्यक्पाकंनजायेतहीनवीर्य्यन्तुकेवलम् ॥ २० ॥

अर्थ-गन्ध प्रसारणी (पसरन) आदि क्वाथ्यद्रव्योंका परिमाण अधिकहो तो उनको एक साथही न लेकर अलग२ रूपसे एक शतपल (१२॥ सेर) द्रव्य ग्रहण कर भली भांतिसे कूटै। और एक द्रोण (६४ सेर) जलसे पाक करे। क्योंकि क्वाथ्य-

द्रव्य परिमाणमें अधिकहो तो बडे पात्रके न मिलनेसे तिसके योग्यजल एक साथ ही नहीं दिया जाता। क्वाथ्यद्रव्यमें बारम्बार जल देनेंसे अथवा जलका परिमाण कम होनेसे भलीभांतिसे पाक सिद्ध न होनेपर औषधिका वीर्य निकल नहीं सकता, वस यह औषधें हीनवीर्य हो जातीं हैं॥ १९॥ २०॥

कल्कक्वाथावनिर्दिष्टोगणात्तस्मात्समाहरेत्।
समस्तवर्गमर्द्धंवायथालाभमथापिवा॥
प्रयुञ्जीतभिषक्प्राज्ञःकालसात्म्यविभागवित्॥२१

अर्थ—कल्क और क्वाथके द्रव्य न कहेहों तो वहांपर स्नेहमें कहे हुए गणके समस्त द्रव्य लाकर कल्क और क्वाथके योग्य परिमाणसे (पहले लिखा गया है) ग्रहण करे गणमें कहे हुए समस्त द्रव्य, या आधे अथवा तहांतक मिले उनकोही, चतुर चिकित्सक काल और सात्म्यादिका विचार करके प्रयोग करे॥ २१॥

यंत्राधिकरणेनोक्तिर्गणेस्यात्स्नेहसंविधौ।
तत्रैवकल्कनिर्व्यूहौविध्येतेस्नेहवेदिना॥ २२॥

अर्थ—पहलेही कहा गया कि कल्क और क्वाथका द्रव्य और भाग न कहाहो तो स्नेहमें कहे हुए द्रव्योंका कल्क और क्वाथ ग्रहण करे, परन्तु यह सब जगह ग्रहण नहीं किया जासकता। नीचे टीके की व्याख्याका प्रमाण दिखाया जाता है॥ २२॥

---

१ यत्रेत्यादि–अधिकारितया यत्र गणत्वमधिकृतं तत्रोभयकलपना। यत्र तन्नास्ति तत्र कल्ककल्पेनैव। अतश्चक्रपाणिकृतसंग्रहे पिप्पल्यादि-घृते तेनैव परिभाषा लिखिता। तत्र निश्चलकरेण व्याख्यातम्। नचा यं पिप्पल्यादिगणोऽधिकरणेन उक्तइतिः। अतः पिप्पल्यादेः कल्क-

गणोक्तमपियद्द्रव्यंभवेद्व्याधावयौगिकम्।
तदुद्धरेद्यौगिकन्तुप्रक्षिपेद्यदकीर्तितम्॥ २३ ॥

अर्थ–जिस रोगमें जैसी औषधिके प्रयोग करनेकी विधि कही है; तिसमें जो कोई द्रव्य विशेष अवस्थाके कारण रोगके अयोग्य हो, तो उसको ग्रहण करे नहीं। योगमें न कहा द्रव्यभी यदि व्याधिके निवारण करने योग्य हो, तो बुद्धिमान् चिकित्सक विचार करके तिसको प्रयोग करे॥ २३ ॥

साध्यन्ज्ञेयाः न क्राथकल्कं कुर्यादिति। अत्र चोक्तम्। "एतद्वाक्यबलादेव कल्कसाध्यं परं घृतमिति"। यत्र स्नेहसाधने अधिकरणेन उक्तः स्यात्तत्र गणे कल्कनिर्व्यूहौ साध्यौ। यत्र गणे अधिकरणेन उक्तिर्नास्ति तत्र कल्ककल्पेनैव न क्राथः कार्य इति।

जहां पर संग्रहकारोंनें गणोंका वर्णन किया हो वहांपर कल्क और क्राथ दोनों ग्रहण करे और जहां न कहा हो वहां स्नेहमें कही हुई औषधियोंका कल्क ग्रहण करे। महात्मा चक्रपाणिदत्तनें अपने संगृहीत ग्रंथमें ऐसीहि परिभाषा लिखी है। ऊपर कहे हुए "गण" शब्दसे "विदारीकन्दादिगण" समझना चाहिये। पिप्पल्यादिगणके सम्बन्धमें ऐसी युक्ति नहीं है।

१ यत्र व्याधौ ये गणाः सन्ति तत्रैव धात्वपेक्षया न विहितास्तत्र गणोक्ता अपि अयौगिकत्वाद्धेयाः धातुव्याध्यनुरूपं कीर्त्तितमपि यौगिकं प्रक्षिपेत्। यथा वायौ रूक्षशैत्यादि, तीक्ष्णकटुकादिपित्ते, कफे स्निग्ध मधुरादि। एतत् सर्वं गणोक्तममि न देयं वातादिषु यद्यदुक्तं तदेव देयं। यदुक्तं लोहशास्त्रे पातञ्जलादयः "उचितमपि हेयमौषधमनुचितमुपादेयमिति संक्षेपः" उचितमप्ययौगिकं हेयम् अनुचितं यौगिकमपि धात्वनुरूपमुपादेयं ग्राह्यमित्यर्थः।

अर्थात् वायुरोगमें रूखे और शीतल द्रव्यादि पित्तसे उत्पन्न हुए रोगमें तीक्ष्ण और कटु रसादि और कफ रोगमें मधुर रसादि द्रव्य गणमें कहेभी हो तोभी प्रयोग न करे। वातादि रोगमें जैसे द्रव्य प्रयोगकी विधि है अर्थात् वातरोगमें स्निग्ध और मधुरद्रव्यादि पित्तरोगमें कटु और मधुरद्रव्यादि और कफरोगमें तीखेद्रव्यादि योगमें न कहे हुए हो तोभी प्रयोग करे। चिकित्सिकको चाहिये कि धातुके अनुरूप औषधीकी कल्पना कररक्खै॥

शार्ङ्गधरस्त्वाह ।

कल्काच्चतुर्गुणीकृत्यघृतंवातैलमेववा ।
चतुर्गुणेद्रवेसाध्यंतस्यमात्रापलोन्मिता ॥ २४ ॥
"पलोन्मितेतिपानादौमात्रादेयानिष्पन्नस्यघृतादेः"

अर्थ-कल्कसे चौगुना घी वा तैल चौगुने (स्नेहकी अपेक्षा) द्रवद्रव्यसे पाक कर ले । पानादिमें इसकी एक पल मात्राका प्रयोग करे । शार्ङ्गधरका यही मत है ॥२४॥

निक्षिप्यक्काथयेत्तोयंक्काथद्रव्याच्चतुर्गुणम् ।
पादशेषंगृहीत्वातुस्नेहंतेनैवसाधयेत् ॥ २५ ॥

अर्थ-क्काथद्रव्यमें चौगुना जल डालकर पकावै । जब चौथाई रहजाय तो उतारकर छान लिया जाय । फिर तिस्से स्नेहादि पाक करे ॥ २५ ॥

क्षीरेद्विरात्रंस्वरसेत्रिरात्रं ।
तक्रारनालादिषुपंचरात्रम् ॥
स्नेहंपचेद्वैद्यवरःप्रयत्ना-
दित्याहुरेकेभिषजःप्रवीणाः ॥ २६ ॥

अर्थ-वृद्धचिकित्सकलोग कहा करतेहैं कि, दूधका पाक दोरातमें, स्वरसका पाक तीन रातमें, तक्र (घोल) और अरनाल (कांजी) आदिका पाक पांचरात्रिके मध्यमें होता है । अर्थात् स्नेहादि इन सब द्रव्योंसे पाक करनाहो तो ऊपर कहे हुए नियमके अनुसार पाककार्य करे ॥ २६ ॥

द्वादशाहन्तुमूलानांवल्लीनांक्रममेवच ।
एकाहंव्रीहिमांसानांपाकंकुर्याद्विचक्षणः ॥२७॥

अर्थ-चतुर वैद्यलोग मूल और लतादिका पाक १२ दिनमें और मांसादिका पाक एकदिनमें तैय्यार करते हैं ॥ २७ ॥

चतुर्गुणेमृदुद्रव्येकठिनेऽष्टगुणंजलम् ।
तथाचमध्यमेद्रव्येदद्यादष्टगुणंपयः ॥
अत्यन्तकठिनेद्रव्येनीरंषोडशिकंमतम् ॥ २८॥

अर्थ–मृदुद्रव्य चौगुनेजलसे और कठिनद्रव्य आठगुने जलसे पाक करे । मृदु और कठिन इनदोनोंके बीचका द्रव्य अर्थात् जो द्रव्य अत्यन्त मृदु और अत्यन्त कठिन नहीं हैं, तिसमें भी आठगुणा जल देकर पाककरे । अत्यन्त कठिन द्रव्य १६ गुणे जलसे पाककरे ॥ २८ ॥

कर्षादितःपलंयावत्क्षिपेत्षोडशिकंजलम् ।
तदूर्ध्वंकुडवंयावद्भवेदष्टगुणंपयः ॥
प्रस्थादितःक्षिपेन्नीरंखारीयावच्चतुर्गुणम् ॥ २९ ॥

अर्थ--एककर्ष (२ तो०) से १ पल (८ तो०) तक औषधि १६ गुण जलमें और तिस्से ऊपर कुडव (६॥ सेर) तक औषधिमें आठ गुण जलसे पाककरे । प्रस्थ (२ सेर) से खारी (५१२ सेर) तक औषधिमें चौगुना जल डालना चाहिये ॥ २९ ॥

अम्बुक्वाथरसैर्यत्रपृथक्स्नेहस्यसाधनम् ।
कल्कस्यांशंतत्रदद्याच्चतुर्थंषष्ठमष्टमम्[1] ॥ ३० ॥

अर्थ–भक्त, क्वाथ और स्वरससे अलग स्नेहका पाक करना हो तो वहांपर कल्क अर्थात् जलसे, स्नेह पाकमें चतुर्थांशका एक अंश कल्कदे; क्वाथसे स्नेहपाक करनाहो तो षष्ठांशका एक अंश कल्क और स्वरससे स्नेहपाक करनाहो तो अष्टमांशका एक अंश कल्क प्रदान करे ॥ ३० ॥

---

१ केवलजलासिद्धे स्नेहमात्रकल्कस्य चतुर्थांशं स्नेहापेक्षयादेयम् एवंक्रमात् केवलन्तुक्वाथासिद्धे कल्कस्यषडंशंदेयम् । रसैरितिस्वरसैः सिद्धेकल्कस्याष्टांशंदेयामित्यर्थः ।

दुग्धेदध्निरसेतक्रेकल्कोदेयोऽष्टमांशिकः ।
कल्कस्यसम्यक्पाकार्थंतोयमत्रचतुर्गुणम् ॥ ३१ ॥

अर्थ–दूध, दही, स्वरस और मट्ठा इनसे स्नेहपाक करनाहो तो आठ भागका एक भाग कल्कदे । और कल्कसे भली भांति पाक होनेके लिये चौगुना जल डालै । वृद्धवैद्योंका यह मतहै ॥ ३१ ॥

द्रवानियत्रस्नेहेषुपंचादीनिभवान्तिहि ।
तत्रस्नेहसमान्याहुर्यथापूर्वंचतुर्गुणम् ॥ ३२ ॥

अर्थ–स्नेहपाकमें यदि पांच या अधिक द्रवपदार्थसे पाक करनेकी विधि कहीहो तो प्रत्येक द्रवद्रव्यका परिमाण स्नेहकी समान ग्रहणकरे और एकसे चारतक द्रव

---

१ केवलदुग्धासिद्धे तैलादौ स्नेहादष्टांशिकःकल्कःकार्यः। एवंदध्निरस इति स्वरूपे । तक्र इति पारिभाषिकतक्रे । सर्वत्राष्टांशिकः कल्को देयः । एतेषां घनत्वेन कदाचित् सम्यक् पाकाऽभावत्वात् सर्वस्मिन्नपि चतुर्गुणं जलं दापयान्ति वृद्धाः ।

२ पंचादीनीति पंचषट्सप्ताष्टकानि तदतिरिक्तान्यपि यत्रस्नेहे द्रवाणि देयानि स्युःतत्रेमानि स्नेहतुल्यानि भवन्ति । यथा पूर्वमिति प्रतिलोमरीत्या पूर्वं पूर्वं चतुः प्रभृत्येकपर्यंतं प्रत्येकं स्नेहाच्चतुर्गुणं द्रवंदयमिति केचिदाहुः। अन्येतु एकादिचतुःपर्यन्तम् मिलित्वा चतुर्गुणं ददते तनैकस्यापि चातुर्गुण्यं द्वाभ्यामपि त्रयाणामपि चतुर्णामपि चातुर्गुण्यमिति ।

यथा महेश्वरचक्रशेषटीकायाम् ।

गुडूचीतैले गुडूचीक्राथं द्वादशशरावं दुग्धशरावं चतुष्टयं मिलित्वा षोडशशरावंटीकायां लिखति । एवं द्राक्षारसेपिषोडशशरावं दत्वा एकस्य द्रव्यस्य चतुर्गुणं लिखति । एवं यष्टिमधुगाम्भारीफलयोर्मिलितयोश्चतुःषष्टिशरावे पानीये पक्त्वा शिष्टषोडशशरावं दत्वा तैलत्रयं पचति । "यथा गुडूचीक्राथदुग्धाभ्यां तैलं लाक्षारसेन वा । सिद्धं मधुककाश्मर्य रसैव वातरक्तनुत् " इति ।

पदार्थसे पाक करना कहाहो तो प्रत्येकका परिमाण स्नेहसे चौगुना ले (कोई २ कहते हैं कि एकसे चारतक द्रवद्रव्यसे पाक करना कहाहो तो उनके समभागमें मिलाहुआ चौगुना परिमाण ग्रहणकरे) ॥ ३२ ॥

द्रवेणकेवलेनैवस्नेहपाकोभवेद्यदि ।
तत्राम्बुपिष्टाकल्कःस्याद्द्रवंचात्रचतुर्गुणम् ३३ ॥

अर्थ–केवल द्रवद्रव्यसे स्नेहपाक करना कहाहो तो इस स्नेहमें जलमें पिसा हुआ कल्कसे और चौगुने जलसे पाक तैयार करे ॥ ३३ ॥

क्वाथेनकेवलेनैवपाकोयत्रेरितःक्वचित् ।
क्वाथ्यद्रव्यस्यकल्कोऽपितत्रस्नेहेप्रयुज्यते ॥३४॥

अर्थ–केवल क्वाथसे स्नेहपाक करना कहाहो, तो इस क्वाथ्य द्रव्यका कल्क यथा परिमाणसे स्नेहमें डालै ॥ ३४ ॥

कल्कहीनस्तुयःस्नेहःससाध्यःकेवलेद्रवे ॥ ३५ ॥

अर्थ–कल्कके विना जिस स्नेहके पाक करनेकी विधि है, सो केवल द्रवद्रव्यसेही पाक करे ॥ ३५ ॥

पुष्पकल्कस्तुयःस्नेहस्तत्रतोयंचतुर्गुणम् ।
स्नेहात्स्नेहाष्टमांशन्तुपुष्पकल्कःप्रयुज्यते ॥ ३६ ॥

अर्थ–यदि स्नेह पुष्पकल्कसे पाककी विधि कहीहो, तो स्नेहमें चौगुना जल डालै । स्नेहका आठवां भाग कल्कदे ॥ ३६ ॥

स्नेहनिष्पत्तिलक्षणमाह ।

स्नेहकल्कोयदांगुल्यावर्त्तितोवर्त्तिवद्भवेत् ।
वन्हौक्षिप्तेचनोशब्दस्तदासिद्धिंविनिर्दिशेत् ॥३७॥

अर्थ–स्नेहके बीचका कल्क (कण) अंगुलिसे पकानेपर

जब बत्तीकी समान होजाय, जब यह कल्क अग्निमें डालनें पर किसी प्रकारका शब्द न करे, तब जाने की स्नेहादिका पाक पूरा हो गया ॥ ३७ ॥

अन्यच्च ।

क्षिप्तेकृशानौनकरोतिशब्दम्
नांगुष्ठलेपीविशदोपिनास्ति ॥
सम्वर्त्तितोवार्त्तिमुपैतिकल्को
निष्पत्तिरेषाघृततैलयोस्तु ॥ ३८ ॥

अर्थ–स्नेहका कल्क आग्निमें डालनें पर जो शब्द न होवै और कल्क अंगुलीमें लेप करने पर जो उंगलीमें लगे अर्थात् यदि बत्तीकी समान हो और अधिक कठिन कल्कका पाक न हो, तो स्नेहका पाक सिद्ध न जाने ॥ ३८ ॥

शब्दस्योपरमेप्राप्तेफेनस्योपरमेतथा।
गन्धवर्णरसादीनांसम्पत्तौसिद्धिमादिशेत् ॥
फेनोऽतिमात्रंतैलस्यशेषंघृतवदादिशेत् ॥३९॥

अर्थ–स्नेह पाकके समय वो एक प्रकारका होता है और भाग उठते हैं उन दोनोंके दूर होनेपर स्नेहमें जो जो वस्तु दीजाती हैं, उन २ वस्तुओंका भलीभांतिसे गन्ध, वर्ण और रसादि स्नेहमें ज्ञात होवै तब घृत और तैलादिके पाकको शेष हुआ जानना। तैल और घृत पाकके सिद्ध होनेमें विशेषता यह है कि तैलका पाक तैयार होनेके समय तेलमें अत्यन्त झाग उठते हैं परन्तु घृतका पाक पूर्ण होनेके समय फेन नहीं होते हैं ॥ ३९ ॥

आस्मिन्नवसरेतोयेक्षारसाध्यंघृतादिषु ॥ ४० ॥
फेनोदयस्यनिष्पत्तिर्नष्टदुग्धसमाकृतिः ॥
सएवतस्यपाकस्यकालोनेतरलक्षणम् ॥ ४१॥

अर्थ-जो क्षारसे घृतादिका पाक करना हो तो पाक तैयार होनेके समय नष्ट दूधके झागकी समान झाग उठते हैं, अतएव तभी पाकको तैयार हुआ जानकर नीचे उतारले॥४०॥४१॥

स्नेहपाकस्त्रिधाप्रोक्तोमृदुर्मध्यःखरस्तथा ।
ईषत्स्वरसकल्कस्तुस्नेहपाकोमृदुर्भवेत् ॥४२ ॥
मध्यपाकस्यासिद्धिश्चकल्केनीरसकोमले ।
ईषत्कठिनकल्कस्यस्नेहपाकोभवेत्खरः ॥४३॥
तदूर्द्धंखरपाकःस्याद्दाहकृन्निष्प्रयोजनः ।
आमपाकश्चनिर्वीर्योवह्निमान्द्यकरोगुरुः॥४४ ॥

अर्थ-मृदुपाक, मध्यपाक और खरपाक, यह तीन प्रकारका स्नेहका पाक है । जिस स्नेहका कल्क कुछेक रसयुक्त है तिसको मृदुपाक कहते हैं । जिसका कल्क नीरस और कोमल है तिसको मध्यपाक कहते हैं और जिसका कल्क कुछ एक कठिन है तिसको खरपाक कहते हैं । इस खरपाकसेभी अधिक कडा पाकहो तो वह दाहजनक और निकम्मा होजाता है। आमपाक अर्थात् स्नेहमें जलहो तो वह वीर्यहीन मन्दाग्निका करनेवाला और भारी होता है ॥४२॥४३॥४४॥

नस्यार्थंस्यान्मृदुःपाकोमध्यमःसर्वकर्मसु ।
अभ्यङ्गार्थंखरःप्रोक्तोयुंज्यादेवंयथोचितम् ४५॥

अर्थ-मृदुपाकका स्नेह नास लेनेमें, मध्यपाकका स्नेह सब क्रियाओंमें और खरपाकका स्नेह मर्दनके काममें आता है ॥

अन्यच्च ।

मृदुर्नस्येखरोऽभ्यङ्गेबस्तौपानेचमध्यमः ॥४६॥

अर्थ–मृदुपाकका स्नेह नास लैनेमें खरपाकका मलनेमें और मध्यपाकका स्नेह पिचकारी देनेमें और पीनेमें प्रयोग करे ॥ ४६ ॥

तुल्येकल्केचनिर्यासेभेषजानांमृदुःस्मृतः ।
संयावइवनिर्यासोमध्योदर्वींविमुञ्चति ।
शीर्यमाणेतुनिर्यासेबध्यमानेखरःस्मृतः ॥४७॥

अर्थ–जो स्नेहका कल्क हत्तेमें चिपक जाय तो उसको मृदुपाक कहते हैं, जो कल्क पिट्ठीकी समान मालूम होकर हत्तेसे अलग होजाय तो मध्यपाक और जो घातनादिसे कल्क कठिन जाना जाय,तब तिसको खरपाक कहा जाता है॥४७॥

सर्वेषामिहद्रव्याणांमध्यपाकःप्रशस्यते ।
वरम्पाकोमृदुःकार्यस्तथापिनखरोमतः ॥
किंचिद्वीर्यंमृदुधत्तेतज्जहातिखरःपुनः ॥ ४८ ॥

अर्थ–सब द्रव्योंका मध्य पाकही उत्तम है, मृदुपाकद्रव्य, अल्पवीर्ययुक्त है, खरपाकयुक्त द्रव्य कोई फल नहीं देता । मृदुपाक तो किया जा सकता है, परन्तु खरपाक करना कभी उचित नहीं, क्योंकि वह वीर्यहीन होजाता है ॥ ४८ ॥

अन्यत्पाकलक्षणमाह ।

वर्त्तिवत्स्नेहकल्कःस्यादंगुल्याचविवर्त्तितः ।
शब्दहीनोग्निनिक्षिप्तःस्नेहसिद्धोभवेत्तदा ॥ ४९ ॥

अर्थ–स्नेहका कल्क ऊंगलीपर चिपकानेसे जब बत्तीकी समान होवै और अग्निमें कल्कके डालनेसे जब किसी प्रकारका शब्द न हो तबही स्नेहादिका पाक सिद्ध हुआ जानै॥४९॥

यदाफेनोद्गमस्तैलेफेनहीनस्तुसर्पिषि।
वर्णगन्धरसोत्पत्तौस्नेहसिद्धिस्तदाभवेत् ५०॥

अर्थ–जब तेलमें बहुतायतसे झाग उठनें लगे और घृत फेन रहित होजाय और यथायोग्य रूपसे अर्थात् स्नेहमें जो वस्तु दीजाती हैं, तिनके रंग गन्ध और रसकी उत्पत्तिहो तब ही स्नेहका पाक सिद्ध हुआ जानें ॥ ५० ॥

घृततैलगुडादींश्चसाधयेन्नैकवासरे।
कुर्वन्तिव्युषितास्त्वेतेविशेषाद्गुणसंचयम् ॥ ५१ ॥

अर्थ–घी, तेल और गुड़ादिका पाक एक दिनमें पूर्ण नहीं करे। क्यों कि वासी करके पाक करना अत्यन्त फलदायक होता है ॥ ५१ ॥

अन्यच्च।

घृततैलगुडादींश्चनैकाहादवतारयेत्।
व्युषितास्तुप्रकुर्वन्तिविशेषेणगुणान्यतः ॥
केवलंव्रीहिजन्त्वङ्गक्वाथोव्युष्टस्तुदोषलः ॥ ५२ ॥

अर्थ–एक दिनमेंही घी, तेल और गुड़ादिका पाक तैयार नहीं करे, क्योंकि वासी करके पाक करनेसे अधिक फल होता है। केवल धान्यादि और प्राणियोंका मांस–क्वाथ वासी करनेंसे दोषकारी हो जाता है ॥ ५२ ॥

गुड़पाकोपलक्षणमाह।

यदादर्वीप्रलेपःस्याद्यदावातन्तुलीभवेत्।
तोयपूर्णेचपात्रेतुक्षिप्तोनप्लवतेगुडः॥ ५३ ॥
क्षिप्तस्तुनिश्चलस्तिष्ठेत्पतितस्तुनशीर्यति।
एषपाकोगुड़ादीनांसर्वेषांपरिकीर्त्तितः ॥ ५४ ॥

अर्थ–जब हतेसे चिपट जाय और सूतकी समान तार निकले (अर्थात् हतेके द्वारा ऊपरको उठानेंपर सूतकी समान तार निकले) और जल भरे बर्त्तनमें डालनेंपर निश्चल रहै, फैल न जाय, तब गुडादिके पाकको सिद्ध हुआ जानै ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

सुखमर्दःसुखस्पर्शोगन्धवर्णरसान्वितः।
पीडितोभजतेमुद्रांगुडपाकमुपागतः ॥ ५५ ॥

अर्थ--मलनें और छूनेंसे चिकना मालूम हो और भली-भांति, गंध, वर्ण और रस गुड़में जाना जाय, हाथसे मलने-पर जब मुद्राकी समान हो जाय तब गुडका पाक सम्पन्न हुआ जाने ॥ ५५ ॥

गुडवद्गुग्गुलोःपाकोरसगन्धविशेषतः ॥५६॥

अर्थ–गूगलका पाकभी गुडके पाककी समान है, गुड और गूगलमें रस व गन्धकी अलगताके सिवाय और कुछभी भेद नहीं है ॥ ५६ ॥

श्रेष्ठमध्यमहीनेषुद्वादशांगचतुष्टयैः।
माषकैर्गुग्गुलोर्मात्रांव्याधिंवीक्ष्यप्रयोजयेत् ॥५७॥

अर्थ–प्रबल अग्निवालेके लिये गूगलकी मात्रा १२ माषा (१॥ तोला) मध्यम अग्निवालेके लिये ८ माषा (१ तो०) हीन अग्निवालोंके लिये ४ माषेकी मात्रा गूगलकी बला-बल विचारके प्रयोग करे ॥ ५७ ॥

अथलोहशोधनादिपरिभाषामाह।

(यदाहुस्त्रिविक्रमपादालौहप्रदीपे)

शुद्ध्यर्थंत्रिफलालोहात्कर्तव्याद्विगुणासदा।

चतुर्गुणंफलात्तोयमर्द्धभागावशेषितम् ॥
एषएवविधिर्नित्यंक्षालनेऽपिप्रशस्यते ॥ ५८ ॥

अर्थ-लोहेको शुद्ध करनेके लिये लोहेके वजनसे दूना त्रिफला ग्रहण करके चौगुने जलमें पकावै, आधा रहनेपर उतारले, तिस्से रोज लोहेको धोवै ॥ ५८ ॥

वधार्थेत्रिफलाग्राह्यालोहान्नित्यंचतुर्गुणा ।
तोयमष्टगुणंतत्रचतुर्भागावशेषितम् ॥ ५९ ॥

अर्थ-लोहेको मारना हो तो लोहेसे चौगुना त्रिफला ग्रहण करके आठ गुणे जलमें पकावै, जब चौथाई रह जाय तब उतार ले ॥ ५९ ॥

भानुपाकार्थमिच्छन्तित्रिफलामयसासमाम् ।
सलिलंद्विगुणंतत्रचतुर्भागावशेषितम् ॥ ६० ॥

अर्थ-भानुपाकके लिये लोहेकी बराबर त्रिफला ग्रहण करके तिसको दूने जलमें पकावै जब चौथाई रह जाय तब उतार ले ॥ ६० ॥

पाच्यद्रव्यात्तुपाकार्थेत्रिफलात्रिगुणेरिता ।
स्यात्षोडशगुणंतोयमष्टभागावशेषितम् ॥ ६१ ॥

अर्थ-लोहपाक करना हो तो लोहेसे तिगुना त्रिफला लेकर १६ गुण जलके साथ पकावै, जब आठवां अंश रह-जाय तब उतार ले ॥ ६१ ॥

अन्यानियानिवस्तूनियोक्तव्यानिपुटादिषु ।
तानिलोहसमान्याहुर्जलंप्रागवेकीर्त्तितम् ॥ ६२ ॥

अर्थ-लोहेके पुटादिमें और वस्तुएं जो दीजाती हैं तिनको लोहेके वजनकी बराबर ग्रहण करे; जलका परिमाण पहले कहा गया ॥ ६२ ॥

लभ्यतेस्वरसोयेषांतेषांक्काथोऽत्रनेष्यते।
त्रिफलाव्यतिरेकेणमतमेतत्पतञ्जलेः ॥ ६३ ॥

अर्थ-पतंजलिका मत-जिन द्रव्योंका स्वरस मिलता है जिनका क्काथ ग्रहण नहीं करे; परन्तु त्रिफलाका स्वरस ग्रहण करना ठीक नहीं, इसका क्काथही ग्रहण करे ॥ ६३ ॥

एषएवविधिर्नित्यंक्षालनेऽपिप्रशस्यते ॥ ६४ ॥

अर्थ-लोहेके धोनेमें प्रतिदिन ऐसा नियमहीं श्रेष्ठ है ॥६४॥

लोहवत्रिफलाव्योम्नित्रिफलावत्पयोमतम् ।
प्राक्कीर्त्तितंजलञ्चात्रमृदुमध्यादिभेदतः ॥ ६५ ॥

अर्थ-लोहेके वजनके अनुसार त्रिफला और त्रिफलाके वजनके अनुसार जल डाले। मृदु, मध्य और कठिनके भेदसे जलका परिमाण पहलेही कहागया है ॥ ६५ ॥

मृदुमध्यकठोरत्वात्क्काथ्यद्रव्यंत्रिधामतम् ।
क्काथ्यद्रव्यानुसारेणदेयंस्थाप्यंजलंत्रिधा ॥ ६६ ॥

अर्थ-मृदु, मध्य और कठिन भेदसे क्काथके द्रव्य तीन प्रकारके हैं। वस क्काथ्यद्रव्यके अनुसार जलका परिमाण भी तीनप्रकारका है ॥ ६६ ॥

पतञ्जलिश्चाह ।

(सामान्यपरिभाषाणांलौहपारमार्थ्यम्)।
द्विगुणांत्रिफलांलोहात्पचेत्षोड़शिकेजले ॥
अष्टभागावशिष्टन्तुमारणेजलमिष्यते ॥ ६७ ॥

अर्थ-लोहेके वजनसे दूना त्रिफला ग्रहण करके १६ गुण जलमें त्रिफलाको पकावै, जब आठवां हिस्सा बचजाय तब उतारकर लोहा मारनेके लिये उसका प्रयोगकरे ॥ ६७ ॥

समाचत्रिफलाग्राह्याजलंचाष्टगुणंतथा ।
वधार्थेस्थापयेत्तोयंतस्यार्द्धंवस्त्रशोधितम् ॥ ६८ ॥

अर्थ–लोहेको मारनेके लिये लोहेके वजनकी बराबर त्रिफला ग्रहण करके आठगुणे जलमें पाक करे जब आधा रहै तब उतारकर कपडेसे छानले ॥ ६८ ॥

वधार्थेनसमंग्राह्यंपाकार्थश्चसमंफलम् ।
अष्टभागावशिष्टंचपाकार्थेजलमिष्यते ॥
एवंजलंफलंप्रोक्तंयथासंख्येनयोजयेत् ॥ ६९ ॥

अर्थ–लोहेको मारनेके लिये और लोहपाकके लिये लोहेकी बराबर त्रिफला ले। पाककेलिये क्वाथ हो तो जब आठवां भागरहे तब उतारले। इस प्रकारके विधानसे जल और त्रिफलाका क्रमानुसार प्रयोग करे ॥ ६९ ॥

अथ लोहपाकलक्षणमाह ।

तदुक्तं पतंजलिना

तावल्लौहंपचेद्वैद्योयावद्वस्त्रेणगालितम् ।
समुद्रंजायतेव्यक्तंनानिःसरातिसन्धिभिः ॥ ७० ॥

अर्थ–कपडेसे छाननेपर जो लोहा समस्त वस्त्रको ढककर कपडेमें लगा रहै। नीचे (वस्त्रके बाहरे) न गिरे तो जाने कि पाक सिद्ध नहीं हुआ अर्थात् जबतक यह समस्त लक्षण दूर नहो जाँय तबतक लोहपाक करे।

अन्यच्च।

अंगुलिभ्यांदृढंघृष्टंयदाचूर्णत्वमागतम् ।
तदासिद्धंविजानीयाल्लोहंलोहाविदांवरः ॥ ७१ ॥

अर्थ–जब अंगुलिकरके जोरसे मसलनेपर चूर्ण होजाय, तब चतुरवैद्य लोहेके पाकको सिद्ध हुआ जानें ॥ ७१ ॥

अन्यच्च ।

अंजनाभंघनंस्निग्धंश्लक्ष्णभूतमलेपनम् ।
अक्लिन्नमम्भसिक्षिप्तंसम्यक्पक्वस्यलक्षणम् ॥ ७२॥

अर्थ–अंजनकी समान कान्तिवाला, गाढ़ा, चिकना, श्लक्ष्ण (महीनचूर्ण) और उंगलीमें कुछेक लगजाय, जलमें डालनेंसे तत्काल कीचड़की समान न होवै, तो लोहेके पाकको सिद्धहुआ जानें ॥ ७२ ॥

मन्दमाहुरथोलोहमलब्धाखिललक्षणम् ॥ ७३ ॥

अर्थ–पहले कहे हुए सबलक्षण लोहेमें न हों तो उसको हीनपाक जानें ॥ ७३ ॥

अतिपाकेनतज्ज्ञेयंखरमुज्झितलक्षणम् ॥ ७४ ॥

अर्थ–अत्यन्तपाक होनेपर पहलेकहे हुए समस्त लक्षणोंको लांघकर लोहा खरभावको प्राप्त होजाता है ।

अमोघतन्त्रेचोक्तम् ।

पाकस्तुत्रिविधःप्रोक्तोमृदुमध्यमतीक्ष्णकः ।
त्रैविध्यात्सर्वधातूनांपित्तानिलकफात्मनाम् ॥७५॥

अर्थ–अमोघतंत्रमें कहाहै कि पित्त, वायु और कफात्मक भेदसे सबप्रकारकी धातुओंका पाक तीनप्रकारका है । यथाः–मृदुपाक, मध्यपाक और खरपाक ॥ ७५ ॥

दर्वीमाश्लिष्यतेयत्तत्स्वैरंस्खलतिवानवा ।
मृदुपाकंविजानीयात्पित्तेतद्वीक्ष्ययोजयेत् ॥७६ ॥

अर्थ–जो लोहा हतेमें लगजाय, कभी खसके कभी नहीं खसके;तिसको मृदुपाक कहते हैं।बुद्धिमान वैद्य विचारके साथ इसको पित्तके कोपमें प्रयोगकरे ॥ ७६ ॥

सिक्तापुंजोपमंयत्तुमुषिकेनसमान्वितम् ।
तदयःखरपाकःस्याच्छ्लेष्मण्येवप्रकीर्त्तितः ॥

एकैकगुणयोगित्वान्नतदिच्छन्तितद्विदः ॥ ७७ ॥
सर्वप्रकृतिसेव्यत्वान्मध्यमंबहुपूजितम् ।
गुडादिप्रविशेद्यत्रतत्रपाकोऽस्यमुद्रया ॥ ७८ ॥

अर्थ–पाकके वर्त्तनमें चिपटकर लोहा रेतीली भूमिकी समान कठिनभाव धारणकरे तो इसको खरपाक कहतेहैं, श्लेष्माके कोपमें इसका प्रयोग किया जा सकताहै । एक २ प्रकारके पाकमें एक २ गुणके दिखाई देनेसे चतुर वैद्यगण तिसको प्रशंसाके योग्य नहीं समझते । मध्य पाकके लोहेको सब स्वभाववाले सेवन करसकते हैं, और यह अत्यन्त उपकारीहै । गुडके साथ जिस लोहेका पाक किया जाय और वह मलनेंसे मुद्राकी समान हो तो पाकको तैयार हुआ जानें ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

अथ भावनाविधिर्लिख्यते ।

द्रवेणयावताद्रव्यमेकीभूयार्द्रतांव्रजेत् ।
तावत्प्रमाणंकर्त्तव्यंभिषग्भिर्भावनाविधौ[1] ॥ ७९ ॥

अर्थ–चिन्तनीय द्रव्य जबतक द्रवद्रव्य (भावित द्रव्य) के साथ एक (मिश्रित) नहो, और गीले नहों तबतकही भावित द्रव्यसे मर्दनकरें ॥ ७९ ॥

दिवादिवातपेशुष्कंरात्रौरात्रौचवासयेत् ।
श्लक्ष्णंचूर्णीकृतंद्रव्यंसप्ताहंभावनाविधिः ॥ ८० ॥

अर्थ–चिन्तनीय द्रव्य भावना देकर दिनको धूपमें सुखावै, रात्रिमें वासीकरे, और तिसके दूसरे दिन सूक्ष्मचूर्ण करके फिर भावना दो इस प्रकारसे एक सप्ताहतक भावनादेना उचित है ॥ ८० ॥

---

१ अत्र जलं पाकार्थमष्टगुणं देयं ग्रन्थान्तरदर्शनात् । "भाव्यद्रव्यसमं क्वाथ्यं क्वाथ्यादष्टगुणं जलम्" इति पश्चाल्लिखितमेव । केचित्तु अनुक्तजलपरिमाणे चतुर्गुणं जलं दत्वा द्रव्यत्वादिविदस्त्वष्टांशशेषगृह्णन्ति ।

ग्रन्थान्तरेच ।

भावद्रव्यसमंक्काथ्यंक्काथ्यादष्टगुणंजलम् ।
अष्टांशशेषितःक्काथोभाव्यानांतेनभावना ॥ ८१ ॥

अर्थ–दूसरे ग्रंथमें कहाहै कि भावना देनेयोग्य द्रव्यकी समान क्काथ्य द्रव्य ग्रहण करके, तिस्से आठ गुणे जलमें पकावै; आठवां अंश रहजाय तब उतार कर तिस्से भावनादे ॥ ८१ ॥

क्षारोदकमाह ।

पानीयोयस्तुगुल्मादौतद्धारानेकविंशतिम् ।
स्रावयेत्षड्गुणेतोयेकेचिदाहुश्चतुर्गुणे[1] ॥ ८२ ॥

अर्थ–गुल्मादि रोगमें जो क्षार–जल दियाजाता है, इसको बनानाहो तो ६ गुणे जलसे २१ वार चुआले ॥ ८२ ॥

द्विरुक्तद्रव्यग्रहणम् ।

घृततैलादियोगेचयद्द्रव्यंपुनरुच्यते ।
ज्ञातव्यंतदिहाचार्यैर्भागतोद्विगुणेनहि ॥
'आदिशब्देनचूर्णवटिकादिलेहप्रभृतिषुज्ञेयामिति। "८३

अर्थ–घी, तेल, वटिका और चूर्णादिके योगमें जो द्रव्य दोवार कहाहै, उस द्रव्यके दो भागदेनें चाहियें ॥ ८३ ॥

चूर्णस्य पाकनिषेधमाह ।

प्रायोनपाकचूर्णानांभूरिचूर्णस्यतेनहि ।

---

१ क्षारात्षड्गुणं जलं दत्वा वस्त्रेण दोलायंत्रं विधाय तदधः पात्रं पातयित्वा क्षारोदकं ग्राह्यम् एवमेकविंशतिवारं पुनः २ स्रावयित्वा ग्राह्यम्।अथवा केचिदाहुः क्षाराच्चतुर्गुणं जलं दत्वा चतुर्थावशिष्टे स्रावयित्वा तज्जलं ग्राह्यम् ।

क्षारजलके तैयार करनेके नियम । क्षार (खार) और जल (ऊपर कहेहुए परिमाणके अनुसार) दोनोंको इकठ्ठाकर दोलायंत्रमें रखके नीचेके पात्रमें चुआवै, ऐसेही२१ वार चुआकर उस जलको ग्रहणकरे । कोई २ कहते हैं कि क्षारको चौगुने जलसे पाककरे चौथाई जलरहनेपर उतार कर चुआले फिर उस जलको ग्रहण करे ॥

आसन्नपाकेप्रक्षेपःस्वल्पस्यपाकमागते[1] ॥८४॥

अर्थ–चूर्णका पाक करना कर्त्तव्य नहींहै लड्डू आदि बनाने हों तो चीनी अथवा गुडका रसकरके पात्र अग्निपरसे उतारे, उसको चूर्ण प्रक्षेप देकर भलीभांतिसे घोलकर लड्डू बनावै। चूर्ण अधिक होतो चीनी या गुडका रसपाक तैयार होनेंके कुछ काल पहले देवै, चूर्ण अल्प (थोडा) हो तो उतार कर कुछेक गरम रहते हुए प्रक्षेपदेवैं ॥ २४ ॥

चूर्णेचूर्णसमोज्ञेयोमोदकेद्विगुणोगुडः ॥ ८५ ॥

अर्थ–औषधिके चूर्णमें, चूर्णकी बराबर गुड, और मोदकमें औषधिसे दूना गुड डालै ॥ ८५ ॥

संख्यापलानांशतशःपलंप्रश्रूयतेयतः ।
तदाचाकृतिमानेनतेषान्तुग्रहणंविदुः[2] ॥ ८६ ॥

अर्थ–जहांपर एक शतपल और पल संख्या कही है, वहां पर जिस द्रव्यकी जैसी संख्या है, उस द्रव्यको उतनाही ग्रहण करे ॥ ८६ ॥

अथानुपानविधिमाह ।

स्थिरतांगतमक्लिन्नमन्नमद्रव्यपायिनः ।

---

१ प्रायः इति प्रचुर्येण प्राचुरार्थ इति आसन्नपाक इति उपस्थितपाके नतु पाकमापन्ने तथा सति प्रचुरचूर्णानां प्रवेशो न स्यादित्यर्थः। स्वल्पस्य चूर्णस्य पाकान्ते कदुष्णदशायां प्रक्षेप इति शेषः।

२ आकृतिमानेनेति यदनुरूपसंख्या येषां तथा तेषां द्रव्याणां ग्रहणं विदुः। एतेन मृद्वादीनां द्वैगुण्यं नानुष्ठेयम् । "पलोल्लेखागते माने न द्वैगुण्यमिहेष्यते।" इति वचनात् । अर्थात् मृदु आदि कोई द्रव्यही दूना ग्रहण न करे । यथा,–" पलोल्लेखागते माने " इत्यादि वचनसे पहले भी कहा गया है पल बताकर जहां मान कहां गया है उस स्थानमें दूना ग्रहण न करे ॥

भवेत्तुबाधाजनकमनुपानमतःपिबेत् ॥ ८७ ॥

अर्थ—" आबाध्यमिति आसम्यक् प्रकारेण बाधक्यं पीडा जनकमित्यर्थः " आहारके संग द्रवद्रव्य (जलादि) को न पान करनेंसे पेटमेंका खायाहुआ द्रव्य सूखकर विविध प्रकारके दोषवाला हो पीडादायक होता है। इस कारण अनुपानके साथ आहारादि करना चाहिये ॥ ८७ ॥

यथाजलागतंतैलंक्षणेनैवप्रसर्पति।
तथाभैषज्यमङ्गेषुप्रसर्पत्यनुपानतः ॥ ८८ ॥

अर्थ—जिस प्रकार जलमें तेल डालनेंसे, एक क्षणभरमें ही तेल जलमें फैल जाता है, तैसेही औषध सेवन करनेके पीछे अनुपानका सेवन करनेसे अति थोडे कालमेंही औषधिका गुण सारे शरीरमें फैल जाताहै ॥ ८८ ॥

रोचनंबृंहणंवृष्यंदोषघ्नंवातभेदनम् ।
तर्प्पणंमार्द्दवकरंश्रमक्लमहरंपरम् ॥ ८९ ॥
दीपनंदोषशमनंपिपासाच्छेदनंपरम् ।
रसवर्णकरञ्चापिअनुपानंसदोच्यते ॥ ९० ॥

अर्थ—जो अनुष्ठान औषधिके योग्यहो वह रुचिदायक, स्थूलता करनेवाला, शुक्रका बढानेंवाला, दोषका नाशकरनेवाला, वायुका अनुलोमन करनेवाला, तृप्तिकारी, देहको कमनीय करनेवाला, श्रांति और क्लान्तिका नाशक, वातादिदोषनाशकारी, श्वासका नाश करनेवाला, रसवर्द्धक और वर्णप्रसादकहै ॥ ९० ॥

वातापिर्भक्षितोयेनअगस्त्येनद्विजोत्तम ।
अनुपानंकृतंतेनकाकथासर्वदेहिनाम् ॥ ९१ ॥

अर्थ—ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ अगस्त्यजी मुनिनें जिसप्रकार वा-

तापि राक्षसको भक्षण करके पचा डाला था, वैसेही आहार अनुपानके साथ खानेंसे जीर्ण हो जाताहै ॥ ९१ ॥

अनुपानंकरोत्यूर्जांतृप्तिंव्याप्तिंदृढांगताम् ।
अन्नसंघातशैथिल्यविक्लित्तीजॅरणानिच ॥ ९२ ॥

अर्थ-"व्याप्ति" शरीरव्यापिनीम् । "विक्लित्तिः" विक्लिन्नता. इत्यर्थः । अनुपान-तेजकारी, तृप्तिकारी, सर्वशरीरव्यापक, शरीरको दृढ करनेवाला और भक्ष्यद्रव्यको शिथिल व क्लिन्न करके पचा देता है ॥ ९२ ॥

स्निग्धोष्णंमारुतेशस्तंपित्तेमधुरशीतलम् ।
कफेनुपानंरूक्षोष्णंक्षयेमांसरसंपयः ॥ ९३ ॥

अर्थ-वायुके कोपमें चिकने और गरमद्रव्य, पित्तके कोपमें मधुर और शीतलद्रव्य और कफके कोपमें रूखे व गरम द्रव्यका अनुपान देना ठीक है । क्षयरोगमें मांसरस वा दूधका अनुपान दे ॥ ९३ ॥

उष्णोदकानुपानञ्चस्नेहानामथशस्यते ।
ऋतेभल्लातकस्नेहात्तत्रतोयंसुशीतलम् ॥९४॥

अर्थ-सब प्रकारके स्नेह (घृतादि) पीनेकी पीछे गरम जलका अनुपान देना ठीकहै, परन्तु भिलावेका स्नेह पीनेके पीछे शीतल जलका अनुपानकरे ॥ ९४ ॥

अन्यच्च ।

भल्लाततौवरेस्नेहेशीतमेवजलंपिबेत् ।
जलमुष्णंघृतेपेयंयूषंलेहेनुशस्यते ॥
वसामज्ज्ञोऽन्नमण्डःस्यात्सर्वेषूष्णमथांबुवा ॥९५

अर्थ-भिलावे और तौवरका[1] स्नेह सेवनकरके शी-

---

१ पत्रैस्तु केशराकारैः कळायसदृशैः फलैः। वृक्षस्तुवरको नाम पश्चिमार्णवतीरजः ॥ राजनि० अरहरका अर्थ करता है।

तल जलपान करे, घीसेवनके पीछे गरम जलका पान और तेलपान करके जूषको पिये। चरबी, मज्जा और अन्नमांड भक्षण करनेके पीछे गरम जलपान करे, सब द्रव्य भक्षण करनेके अन्तमेंही गरमजल पीना ठीकहै ॥ ९५ ॥

अन्यच्च ।

शीतोष्णतोयासवमद्यमुद्ग-
फलाम्बुधान्याम्लपयोरसानाम् ॥
यस्यानुपानन्तुभवेद्धितंयत् ।
तस्मैप्रदेयंत्विहमात्रयातत् ॥ ९६ ॥

अर्थ-शीतलजल, गरमजल, आसव (मद्यविशेष) मद्य और मूंगादिका जूस नींबू आदि, अम्लरस, कांजी, दूध और मांसरस, इनमेंसे जो अनुपान जिसके लिये हितकारीहो,तैसाही अनुपान योग्य मात्रासे तिसे पीनेको दे९६॥

अन्यच्च ।

यूषोमांसरसोवापिशालिमुद्गादिभोजनम् ।
मांसादीनांचानुपानंधान्याम्लंदधिमस्तुवा ॥ ९७ ॥

अर्थ-सट्ठीके चावल और मूंगादि खानेंवालोंके लिये जूस और मांसरस हितकारी है। मांसादि भोजन करनेके पीछे कांजी और दहीके माथको पीना हितकारी है ॥ ९७ ॥

अथानुपानमात्रामाह ।

अनुपानंप्रयोक्तव्यंव्याधौश्लेष्मभवेपलम् ।
पलद्वयन्त्वनिलजेपित्तजेतुपलत्रयम् ॥
गुडक्षौद्रासितादीनांपलार्द्धंचाविशेषतः ॥
"पलमत्रसौश्रुतम्" ॥ ९८ ॥

अर्थ-श्लेष्मासे उत्पन्न हुए रोगमें एक पल (८ तो०) वायु-

के रोगमें २ पल और पित्तसे उत्पन्न हुए रोगमें तीन पल अनुपान देना चाहिये, परन्तु गुड, शहद और चीनी इनका अनुपान देनाहो, तो पहले कहेकी अपेक्षा आधी मात्रादे ॥ ९८ ॥

दीप्ताग्नयोमहाकायाःस्नेहसात्म्यंमहाबलाः ।
विसर्पोन्मादगुल्मार्त्ताःसर्पदंष्ट्रविषार्दिताः ॥
ज्येष्ठांमात्रांपिबेयुस्तेपलान्यष्टौविशेषतः॥ ९९॥

अर्थ-जिसकी अग्नि दीप्त है बडे शरीरवाला स्नेहसेभी और अत्यन्त बलवान पुरुष और विसर्प (पाण्डुरोग) उन्माद गुल्मरोगवाला, सांपसे काटा हुआ, विष खानेंसे अर्दित हुआ पूर्णमात्रा (८ पल) का अनुपान सेवनकरें ॥ ९९ ॥

अथ लौहानुपानमाह ।

माहिषंगव्यमाजञ्चपयोग्राह्यंत्रिधायसि ।
माहिषंभस्मकेदेयमाजंक्षीरंपुनर्म्मतम् ॥१००॥
कोष्ठदोषकफेश्वासेकासेचापिनवज्वरे ।
गव्यमन्यत्रसर्वत्रसमवारिप्रसाधितम् ॥१०१॥

अर्थ-भैंसका दूध, गायका दूध और छागदूध यह तीन प्रकारके दूध लोहेके अनुपानमें प्रयोग करनें चाहिये । तिसमें भस्मकरोग (यह ऐसा रोग है कि चाहें जितना खावो मगर भूंख बनी रहै) में लोहेका प्रयोग करनाहो तो भैंसके दूधका अनुपानदे । कोष्ठदोष, कफकोप, श्वास और खांसीके रोगमें और नवज्वरमें छाग (बकरी) दूधका अनुपानदे । इसके सिवाय सब रोगोंमें गायके दूधका अनुपानदे । यह तीनों प्रकारके दूध बराबर जलके साथ औटावै । जब केवल दूध रह जावे तो उतारके अनुपानमें प्रयोग करे १०० ॥ १०१ ॥

सर्वत्रगव्यमेवेतिमतमाहपतंजलिः ।
अनुपानंप्रयोक्तव्यंलौहात्षाष्टिगुणंपयः ॥१०२॥
यदातुवर्द्धितंक्षीरंतदार्द्धंभोजनेपिबेत् ।
दद्यात्संशमनेतस्ययोऽत्यर्थक्षीणपावकः १०३॥

अर्थ–पतञ्जलि कहते हैं कि सबही कहीं गायका दूध प्रयोग करे। लोहेके वजनसे ६० गुण दूधका अनुपान करे जब दूधकी मात्रा अधिक (लोहेकी मात्रा के अनुसार) होवै, तो पहले जितना दूधका वजन कहाहै, तिसके सिवाय औरभी दूध भोजनके साथ सेवन करे। क्षीणाग्निवाला भोजनकी बराबर व्यवहार करे॥ १०३॥

अथानुपानविशेषमाह।

अनुपानंहिमंवारियवगोधूमयोर्हितम्।
दधिमन्तेविषेक्षौद्रेऽनुष्णपित्तामयेपिच॥१०४॥
ऊर्ध्वजत्रुगदेश्वासकासोरःक्षतपीनसे।
गीतभाष्यप्रसाहेषुस्वरभेदनताद्धितम् ॥१०५॥
नपिबेच्छ्वासकासार्तोरोगेचाप्यूर्ध्वजत्रुगे।
क्षतोरस्कःप्रसेकीचयस्यचोपहतःस्वरः ॥ १०६ ॥

अर्थ--जौ और गेऊं भोजन करनेके अन्तमें, विषदोषमें, शहद पीनेके पीछे और पित्तरोगमें शीतलजलका पीना हितकारी है; परन्तु हंसलीके ऊपरके रोगमें, श्वास व खांसीके रोगमें, पेटघावके रोगमें, पीनसरोगमें, गीत और वाक्य कहकर थकेहुओंके लिये, स्वरभंगरोगमें शीतल जल हितकारी नहीं है। अतएव ऐसोंको शीतलजलका अनुपान न दे॥ १०४। १०५। १०६॥

अथशिशोर्भैषजपरिमाणमाह।

प्रथमेमासिजातस्यशिशोर्भैषजरत्तिका।
अवलेह्यातुकर्त्तव्यामधुक्षीरसिताघृतैः॥
एकैकांवर्द्धयेत्तावद्यावत्सम्वत्सरोभवेत्[1] ॥ १०७॥

अर्थ–एक मासके बालकको एक रती औषध मधु, दूध, चीनी और घृत इनमेंसे चाहें जिसका अवलेह बनाकर सेवन करावै। फिर एक वर्षकी उमरतक प्रतिमासमें एक २ रती करके औषधिकी मात्रा बढावै। एक वर्ष पूर्ण होजानेंपर बारह रती औषाधिकी मात्राका प्रयोग करना चाहिये॥ १०७॥

तदूर्द्धंमाषवृद्धिःस्याद्यावदाषोडशाब्दिकः।
ततस्तुसप्ततियावत्कर्षमात्रांप्रयोजयेत्॥
एवमेवविभागोयंतदूर्द्धंबालवत्क्रिया[2]॥ १०८॥

अर्थ–एक वर्षसे लेकर १६ वर्षतक प्रत्येक वत्सरमें एक २ माषा करके औषधिकी मात्रा बढावै। फिर सोलह वर्षके पीछे सत्तरवर्षतक एक कर्ष अर्थात् २ तो॰मात्रासे औषधिका प्रयोग करे। इसप्रकार विधिके अनुसार मात्राका विभाग करले। फिर सत्तरवर्षके उपर सारी जिन्दगीतक बालककी समान औषधिकी मात्राका प्रयोग करे।१०८।

---

१ जातस्य शिशोर्बालकस्य प्रथमे मासि भेषजस्य रक्तिकामात्रा मध्वादिभिर्लेढुं दातव्या, प्रथममासादारभ्य द्वादशमासपर्यंतं मासं मासं प्रति रक्तिकैका वृद्धिः कार्या नात्र दशरतिकपरिमाणमाषकं विभागम्। किन्तु सम्वत्सरपूर्णार्थं द्वादशरक्तिका मात्रा देयेति भावः।

२ तदूर्द्धमिति द्वादशमाषादूर्द्धं तेन द्वितीयवर्षप्रथममासादारभ्य षोडशवर्षपर्यन्तम् माषकवृद्ध्या कर्षपूरणं कार्यम्। ततः षोडशवर्षात् सप्तति यावत् तावदेव कर्षेणैव व्यवहारः॥ तदूर्ध्वं सप्ततेः परं यावज्जीवनपर्यंतं बालवत् मात्रा कार्येति शेषः॥

अन्येप्याहुः ।

रक्तिमारभ्यकर्षन्तुमानंबालगदेमतम् ।
कर्षादौतुजलश्रुत्याक्काथ्यस्यकार्षिकोमतः ॥१०९
"कर्षादावितिप्रागुक्तंपरिभाषया ।
कर्षादौतुपलंयावद्द्यात्षोडाशिकम्
जलमित्याख्यायेतिशेषः"

अर्थ–बालकको जो औषधि दीजाती है उसकी मात्रा एक रतीसे लेकर एककर्ष (२ तो०) तकहै । क्काथका प्रयोग करनाहो तो क्काथ्यद्रव्य एककर्ष ग्रहण करके पहले कहे हुए वचनके अनुसार १६ गुण जलडाले और क्काथ बनाकर प्रयोगकरे ॥ १०९ ॥

यस्तुस्यात्क्षीरपोबालःकषायंपातुमक्षमः ।
तदाभिषक्कुमारस्यतस्यधात्रींचपाययेत् ॥११०॥

अर्थ–जो दूधका पीनेंवाला बालक क्काथको न पीसके तो जिसका दूध यह बालक पीताहो, उसको यह क्काथ पान करावे ॥ ११० ॥

येगदानांचयेयोगाःप्रोक्ताःस्वेस्वेचिकित्सिते ।
तेषांकल्केनसंलिप्तौकुमारंपाययेत्स्तनौ ॥१११॥

अर्थ–चिकित्सास्थानमें जिस २ रोगका जो जो योग कहाहै, बालकको रोगहो तो उसी २ योगका कल्क छाई (बालक जिसका दूध पीताहै) के दोनों स्तनोंमें लेपकरके बालकको स्तन पिलावै ॥ १११ ॥

त्रिविधाःकथिताबालाःक्षीरान्नोभयवर्त्तिनः ।
स्वास्थ्यंताभ्यामदुष्टाभ्यांदुष्टाभ्यांव्याधिसम्भवः११२

"बालास्तु त्रिविधा भवन्ति, क्षीरवर्त्ती, अन्नवर्त्ती, उभयवर्ती च । उभयवर्त्तीति क्षीरान्नाभ्यां द्वाभ्यां वर्त्तनं येषामिति ॥"

अर्थ-तीनप्रकारके बालकहैं, दूधपीनेंवाला, अन्नखानेंवाला, दूध और अन्न दोनोंका खानेंवाला।शुद्ध दूध और अन्नसे बालक निरोग रहताहै, दूषित दूध व अन्नसे व्याधिग्रस्त होजाताहै ११२

अथभैषज्यभक्षणकालमाह ।

भैषज्यकालेभक्तादौमध्येपश्चान्मुहुर्मुहुः ।
सामुद्गंभक्तसंयुक्तंग्रासेग्रासान्तरेऽष्टधा ॥ ११३ ॥

अर्थ-औषधि भक्षण करनेंके काल आठ प्रकारकेहैं-भोजनके पहिले, मध्यमें, अन्तमें और बारम्बार, सामुद्ग (भोजनसे पहिले और पीछे), भक्तसंयुक्त, ग्रासमें और दूसरे ग्रासमें यह आठ बिधिहैं ॥ ११३ ॥

अपानेविगुणेपूर्वंसमानेमध्यभोजने ।
व्यानेतुप्रातरशनमुदानेभोजनोत्तरम् ॥ ११४ ॥
वायौप्राणेप्रदुष्टेतुग्रासेग्रासान्तइष्यते ।
श्वासकासपिपासासुतत्तुकार्यंमुहुर्मुहुः ॥ ११५ ॥
सामुद्गंहिक्किनेदेयंलघुनान्नेनसंयुतम् ।
संभुज्यंत्वौषधंभक्षैर्विचित्रैररुचौहितम् ॥ ११६ ॥

" सामुद्गमिति " सामुद्गंभेषजं
विद्यादन्नस्याद्यवसानयोरिति ॥

अर्थ-अपानवायु कुपितहो तो भोजनसे पहले, समानवायु कुपितहो तो भोजनके मध्यमें, व्यानवायु कुपितहो तो प्रातःकालमें, उदानवायु कुपितहो तो भोजनके पीछे, प्राण-

वायु कुपितहो तो ग्रासमें और दूसरे ग्रासमें औषधिका प्रयोग करे। दमा, खांसी और तृष्णारोगमें बारम्बार हिचकीरोगमें लघुद्रव्यके साथ भोजनसे पहले और पीछे और अरुचिरोगमें विविधप्रकारके श्रेष्ठ खाद्यद्रव्योंके साथ औषधिका प्रयोग करे॥ ११४॥ ११५॥ ११६॥

अन्येत्वाहुः।

अभक्तंपूर्वभक्तंचमध्यभक्तंसभक्तकम्।
भक्तोपरिष्टात्सामुद्गंभक्तस्यैवान्तरेऽपिच॥११७॥
ग्रासेग्रासान्तरेचैवमुहुर्मुहुरितिस्मृतः।
कालादशैतेधीमद्भिरौषधस्यसमासतः॥ ११८॥

अर्थ–अभक्त, पूर्वभक्त, मध्यभक्त, सभक्तक, पश्चाद्भक्त, सामुद्ग, भक्तान्तर, ग्रासमें, ग्रासान्तरमें और वारंवार-संक्षेपसे औषधिं भक्षण करनेके यह दश काल बुद्धिमान् लोगोंने कहेहैं॥ ११७॥ ११८॥

बलिनोमहतोव्याधेरभुक्तेभेषजंहितम्।
सर्वव्याधिहरंपथ्यंपूर्वभक्तंमहौषधम्॥ ११९॥
मध्यकायगतान्रोगान्मध्येभक्तंनिहन्तिच।
सभक्तंसुकुमाराणांबालानामौषधंद्विषाम्॥ १२०॥
भक्तोपरिष्टात्सुस्थश्चऊर्द्ध्वंजत्रुविकारिणाम्।
सम्बन्धोवर्च्चसांमुद्गंदीप्ताग्निबलिनांहितम्॥२१॥
भक्तयोरन्तरेज्ञेयंभोजनद्वयमध्यतः।
तच्चनित्यंप्रयुञ्जीतमध्यदेहविकारिणाम्॥ २२॥
ग्रासेग्रासेकृताग्नीनांरव्याशक्तिाधियामपि।

ग्रासान्तरेहितंविद्यात्कुष्ठमेहविकारिणाम् ॥
श्वासकासपिपासानांतत्तुकार्यंमुहुर्मुहुः ॥ २३ ॥

अर्थ-बलवान् और अत्यन्त बडी व्याधिमें अभक्त औषधि हितकारी है पूर्वभक्त औषधि सर्व व्याधिनाशक, मध्यभक्त औषधि शरीरके भीतरे घुसेहुए रोगका नाश करनेवाली सुकुमार बालक और दवासे विरोधकारियोंके लिये समस्त औषधि सुस्थ शरीरवाले और ऊर्द्धजत्रुगत रोगियोंके लिये पश्चाद्भक्त औषधि हितकारी है। कब्जवाले रोगीके, दीप्तअग्निवाले और बलवान पुरुषोंके लिये सामुद्ग (भोजनके आदि और अन्तमें) सेवित औषधि हितकारी है। भोजनके मध्यमें दोबार जो औषधि सेवनकीजाती है तिसको भक्तान्तर औषधि कहते हैं। शरीरमें घुसेहुए रोगकेलिये यह सदा प्रयोग करे। हीन अग्निवालेके लिये ग्रास २ में औषधिका सेवन करना उपकारी है। कोढ व प्रमेहके रोगियोंको ग्रासान्तरमें दमा, खांसी और तृष्णारोगमें वारम्वार औषधिका सेवन करना हितकारि है ॥ १९ ॥ १२० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

अन्यच्च।

भैषज्यमभ्यवहरेत्प्रभातेप्रायशोबुधः।
कषायास्तुविशेषेणतत्रभेदस्तुदर्शितः[1] ॥२४॥

अर्थ-बहुधा प्रातःकालमें पंडितगण औषधिका प्रयोग करे, परन्तु व्याधिविशेषमें, धातुविशेषमें, स्वभावविशेषमें दूध और कषायादि औषधि विचारके प्रातःकालमें मध्याह्नकालमें अथवा सायंकाल और रात्रिमें प्रयोग करे ॥ २४ ॥

---

१ भेदः पुनः कषायपानेन वा पयस्तु प्रातः सायं मध्याह्ने रात्रौ च व्याधिविशेषधातुविशेषप्रकृतिविशेषतारतम्यतया देयामित्यर्थः।

ज्ञेयःपंचविधःकालोभैषज्यग्रहणेनृणाम् ।
किंचित्सूर्योदयेजातेतथादिवसभोजने ॥२५॥
सायन्तनेभोजनेचमुहुश्चापितथानिशि ।
प्रायःपित्तकफोद्रेकेविरेकवमनार्थयोः ॥ २६ ॥
लेखनार्थेचभैषज्यंप्रभातेऽनन्नमाहरेत् ।
एवंस्यात्प्रथमःकालोभैषज्यग्रहणेनृणाम्॥२७॥

इति प्रथमःकालः ।

अर्थ–औषधि भक्षण करनेके पांच काल हैं यथा–सूर्योदयकालमें, दिनके समय भोजन करनेके वख्त, सन्ध्यासमयके भोजनमें, वारम्वार और रात्रिकालमें, तिनमें पित्त और कफके रोगमें और विरेचन, वमन व कर्षणके निमित्त अन्नके अतिरिक्त औषधि प्रातःकालमें प्रयोग करे । औषधि ग्रहण करनेका यह प्रथम काल है ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

भैषज्यंविगुणेऽपानेभोजनाग्रेप्रशस्यते ।
अरुचौचित्रभोज्यैश्चमिश्रं रुचिरमाहरेत् ॥२८॥
समानवातेविगुणेमन्देग्नावपिदीपनम् ।
दद्याद्भोजनमध्येतुभैषज्यंकुशलोभिषक् ॥२९॥
व्यानकोपेचभैषज्यंभोजनान्तेसमाहरेत् ।
हिक्काक्षेपककम्पेषुपूर्वमन्तेचभोजनात् ॥
एवंद्वितीयकालश्चप्रोक्तोभैषज्यकर्मणि ॥१३०॥

इति द्वितीयःकालः ।

अर्थ–अपानवायुके कोपमें भोजनके पहले औषधिका प्रयोग करे । अरुचिरोगमें विविधसुखाद्य और रुचिकारक भक्ष्य-

द्रव्योंके साथ औषधिका प्रयोग करे। समानवायुके कोपमें और मन्दाग्निमें, चतुर वैद्य भोजनके बीचमें अग्निको उकसानेवाली औषधिका प्रयोग करे। व्यानवायुके कोपमें भोजनके बाद और हिचकी, आक्षेप और कंपादिरोगमें भोजनके पहले और पीछे औषधिका प्रयोग करना चाहिये। औषधिप्रयोगका यह दूसरा काल है ॥ २८ ॥ २९ ॥ १३० ॥

उदानेकुपितवातेस्वरभङ्गादिकारिणि।
ग्रासेग्रासान्तरेदेयंभैषज्यंसात्म्यभोजने ॥३१॥
प्राणेप्रदुष्टेसात्म्यस्यभक्तस्यान्तेचदीयते।
औषधंप्रायशोधीरैःकालोऽयंस्यात्तृतीयकः ॥३२॥
इति तृतीयःकालः।

अर्थ-स्वरभंगादिरोगका करनेवाला उदानवायु कुपितहो तो रोगदूरकारी भक्ष्यद्रव्यके साथ ग्रासमें और ग्रासान्तरमें औषधिका प्रयोगकरे, प्राणवायुके कोपमें हितकारी भक्ष्य-द्रव्यकेसाथ और भोजनके अन्तमें औषधिका प्रयोग करे। बहुधा पंडितोंका यही मत है। औषधि प्रयोगका यह तीसरा काल है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

मुहुर्मुहुश्चतृट्छर्दिहिक्काश्वासगरेषुच।
सान्नञ्चभेषजंदद्यादितिकालश्चतुर्थकः ॥ ३३ ॥
इति चतुर्थःकालः।

अर्थ-प्यास, वमन, हिचकी, श्वास और गर (विष) दोषमें अन्नके साथ वारम्वार औषधिका प्रयोगकरे। औषधिप्र-योगका यह चौथाकाल है ॥ ३३ ॥

ऊर्द्धजत्रुविकारेषुलेखनेबृंहणेतथा।

पाचनेशमनेदेयमनन्नंभेषजंनिशि ॥

इत्ययंपंचमःकालःप्रोक्तोभैषज्यहेतवे ॥ ३४ ॥

इति पंचमःकालः ।

अर्थ–उर्द्ध्वजत्रुगतरोगमें, लेखनमें (निरूह बस्ति) बृंहणमें,पाचनमें और शमनमें[1] रात्रिके समय अन्नरहित औषधिका प्रयोग करे । औषधिप्रयोगके पांचमें कालका यह वर्णन हुआ ॥ ३४ ॥

अथ क्रियाकालव्यवस्थामाह ।

यातूदीर्णंशमयतिनान्यंव्याधिंकरोतिच ।

साक्रियानतुयाव्याधिंहरत्यन्यमुदीरयेत्[2] ॥ ३५ ॥

अर्थ–जिस क्रियाकरके उत्पन्नहुआ रोग नाशको प्राप्त होवै और दूसरे रोगोंकी उत्पत्तिका कारण नाश होजाय, तिसको चिकित्सा कहाजाता है; परन्तु जिस क्रियासे एक रोगका निवारण होकर दूसरे रोगकी उत्पत्ति हो तिसको चिकित्सा नहीं कहते ॥ ३५ ॥

तथाच चरकचिकित्साप्राकृतीयाध्याये ।

याभिःक्रियाभिर्जायन्तेशरीरेधातवःसमाः ॥

साहिक्रियाविकाराणांकर्मतद्भिषजांमतम् ॥ ३६ ॥

“ भिषजां” चिकित्सकानामित्यर्थः ।

अर्थ–जिस क्रियाकरके शरीरकी सब धातुएँ बराबर रहैं, तिसको चिकित्सा कहतेहैं; ऐसी क्रिया कोही चिकित्सकोंकी सम्मातिके अनुसार है ॥ ३६ ॥

---

१ उत्पन्नहुए विषमदोषोंका निवारण करना या बराबर करना ।

२ अन्यमिति–ज्वरादीनामन्यमतं न उदीरयेदिति न वर्द्धयेत् न जनयेदित्यर्थः ।

अल्पेगदेमहत्कर्म्मक्रियालघ्वीमहागदे।
द्वयमेतदकौशल्यंकौशल्यंयुक्तिकर्मता ॥ ३७ ॥

अर्थ-साधारण रोगमें महान् चिकित्सा और महारोगमें अल्प चिकित्सा यह दोनोंही अहितकारी हैं इस कारण यथायोग्य चिकित्साही हितकारी है ॥ ३७ ॥

क्रियायास्तुगुणालाभेक्रियामन्यांसमाचरेत्।
पूर्वस्यांशांतवेगायांनाक्रियासंकरोमतः[1] ॥ ३८ ॥

अर्थ-एक क्रियासे रोगकी शान्ति न हो तो दूसरी क्रिया करे। परन्तु जबतक पहली क्रियाका (पहली औषधिकी क्रियाका) वेग शान्त नहो तबतक दूसरी क्रिया नहीं करनी चाहिये। क्योंकि मिश्र औषधिका प्रयोग परस्पर गुणविरोधी होकर अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न करसकता है ॥ ३८ ॥

तथापिसाङ्कर्य्यमाह।

क्रियाभिस्तु[2]ल्यरूपाभिःक्रियासाङ्कर्य्यमिष्यते।
भिन्नरूपतयातास्तुतन्नकुर्वन्तिदूषणम् ॥ ३९ ॥

अर्थ-एकप्रकारकी दो क्रिया साङ्कर्य (व्यामिश्र) दोषजनकहैं परन्तु दूसरी प्रकारकी क्रियासाङ्कर्य और दोषावह नहीं हैं॥३९॥

---

१ संकरो व्यामिश्रता। अतो मुख्यप्रयोगानां मिश्रणमेकस्मिन्नेव रोगिणि न कर्त्तव्यं परस्परगुणविरोधात् भैषज्यगुणवैकल्यादग्निमान्द्यजननत्वाच्च ॥

२ तुल्यरूपाभिः क्रियाभिःक्रियासाङ्कर्य्यमिष्यते, तु पुनस्ताः क्रिया चेद्भिन्नरूपा न भवन्ति तदा न सांकर्य्यमिति तुशब्देनैतदुच्यते। अतो भिन्नरूपतया अतुल्यरूपाभिः क्रियाभिर्न क्रियासाङ्कर्यं भवतीत्यर्थः। एतेनैव बोधयति पाचनघृतयोर्द्वयोर्गुड़वटकलेहगुडिकादीनाञ्च पाचनयुक्तानामेकस्मिन्नेव रोगिण्येकदिने प्रयोगः कर्त्तव्यो यथा व्याधेरनुपानं यद्यत् पाचनविहितमिति, किन्तु भिन्नरूपेणौषधद्वयेन दोषप्रसङ्गः स्यादेव, अतः परस्पराविरोधित्वेन औषधद्वयकल्पना कार्या। यथा गुडिकाद्वये लेहद्वयमाधिकमिति दिक् ॥

षड्भिःकेचिदहोरात्रैःकेचित्सप्तभिरेवच।
इच्छन्तिमुनयःप्रायोरसस्यपरिवर्त्तनम्।
कृत्वाकुर्य्यात्क्रियांप्राप्तांक्रियाकालंनहापयेत् १४०

अर्थ–किसीके मतसे इसका बदल छयदिन छयरातमें होताहै और कोई कहतेहैं कि सातदिन सातरातमें भली भांतिसे रसका बदल होजाता है यथा समयमें अर्थात् रोगके आरम्भमें चिकित्सा करना उचित है। चिकित्साका समय लंघन करना कर्त्तव्य नहींहै ॥ १४० ॥

सर्वश्चरोगेप्रशमायकर्म्म।
हीनातिरिक्तंविपरीतकालम् ॥
मिथ्योपचारान्नहितद्विकारम्।
शान्तिंनयेत्पथ्यमपिप्रयुक्तम् ॥ ४१ ॥

अर्थ–रोगकी शान्तिके लिये अल्पचिकित्सा करन अधिक क्रिया करना, या यथायोग्य कालको लांघ जाकर चिकित्सा करना, मिथ्या उपचार (वृथा औषधिका प्रयोग करना) यह सबही न करने चाहियें। क्यों कि उपरोक्त रीतिसे सुपथ्यभी दिया जाय तोभी उस्से रोगका नाश नहीं होता ॥ ४१ ॥

अथ पारिभाषिकीं संज्ञामाह।

वृक्षाम्लमातुलुङ्गाम्लौबदराम्लाम्लवेतसौ।
चतुरम्लमिदंतद्धिपंचाम्लञ्चसदाडिमम् ॥ ४२ ॥

अर्थ–वृक्षाम्ल, विजौरानींबू, बदरी, (बडा आमला) और अमलवेंत इन चारके संयोगको चतुरम्ल और चतुरम्लके साथ दाडिमका संयोग करनेसे तिसको पंचाम्ल कहते हैं ॥ १४२ ॥

सौवर्चलंसैन्धवंचविडमौद्भिदमेवच।
सामुद्रेणसहैतानिपञ्चस्युर्लवणानिच॥
एकद्वित्रिचतुःपञ्चलवणानिक्रमाद्विदुः॥ ४३॥

अर्थ-विरियासंचर, सेंधा, विड, उद्भिद और समन्दरनोन, इनपांचके मेलको पंचलवण कहतेहैं। क्रमानुसार इनमेंसे एकको एकलवण, दोको द्विलवण, तीनको त्रिलवण इत्यादि कहा जाता है॥ ४३॥

अविमूत्रमजामूत्रंगोमूत्रंमाहिषञ्चयत्।
हस्तिमूत्रमथोष्ट्रस्यहयस्यचखरस्यच॥
इतिप्रोक्तानिमूत्राणियथासामर्थ्ययोगतः॥ ४४॥

अर्थ-मेषमूत्र, छागमूत्र, गोमूत्र, माहिषमूत्र, हस्तिमूत्र, उष्ट्रमूत्र, अश्वमूत्र, और गर्दभमूत्र, इन आठको मूत्रवर्ग कहतेहैं. इनमें जिसका मूत्र संग्रह कियाजाय, तिसकोही प्रयोगकरे॥ ४४॥

सर्पिस्तैलंवसामज्जास्नेहोप्युक्तश्चतुर्विधः।
पानाभ्यंजनबस्त्यर्थंनस्यार्थञ्चैवयोगतः॥ ४५॥

अर्थ-घी, तेल, वसा और मज्जा यह चार प्रकारके स्नेह हैं, यह पान अभ्यङ्ग (मर्दन) पिचकारी और नस्यकर्ममें प्रयोगकरे॥ १४५॥

अविक्षीरमजाक्षीरंगोक्षीरंमाहिषञ्चयत्।
उष्ट्रीणांहस्तिनीनाञ्चवडवायाःस्त्रियस्तथा॥ ४६॥

अर्थ-मेषदुग्ध, छागदुग्ध, गोदुग्ध, माहिषदुग्ध, उष्ट्रीदुग्ध, हस्तिनीदुग्ध और गधयाका दूध, इन सबको दुग्धवर्ग कहतेहैं॥ १४६॥

चातुर्जातंसमाख्यातंत्वगेलापत्रकेशरैः ॥ ४७ ॥

अर्थ–दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर इन चारको चातुर्जात कहतेहैं ॥ १४७ ॥

तदेवत्रिसुगन्धिस्यात्रिजातकमकेशरम् ॥ १४८ ॥

अर्थ–नागकेशरके सिवाय और तीन अर्थात् दालचीनी, इलायची और तेजपात इनके संयोगको त्रिजातक कहतेहैं ॥ १४८ ॥

चातुर्जातककर्पूरकक्कोलागुरुसिह्लकम् ।
लवङ्गसहितञ्चैवसर्वगन्धंविनिर्दिशेत् ॥ १४९ ॥

अर्थ–चातुर्जातक, कपूर, काकोली, अगुरु, शिलारस (लोबान)और लोंग इनके मेलको सर्वगन्ध कहतेहैं ॥ १४९ ॥

पथ्याविभीतकंधात्रीमहतीत्रिफलामता ।
स्वल्पाकाश्मर्य्यखर्ज्जूरःपरूषकफलैर्भवेत् ॥१५०॥

अर्थ–हरड, आमला और बहेडा इनको महती त्रिफला कहतेहैं और गाम्भारीफल, खजूर, फालसा इनतीनको स्वल्प त्रिफला कहतेहैं ॥ १५० ॥

पिप्पलीशृङ्गवेरञ्चमरिचंत्र्यूषणंविदुः ।
विडङ्गमुस्तचित्रैश्चत्रिमदःसमुदाहृतः ॥ १५१ ॥

अर्थ–पीपल, सोंठ और मिर्च इनतीनको त्र्यूषण और वायविडङ्ग मोथा और चीता इन तीनको त्रिमद कहतेहैं ॥ १५१ ॥

उदुम्बरोवटोऽश्वत्थोवेतस[1]ःप्लक्षएवच ॥
पंचैतेक्षीरिणोवृक्षाःसंज्ञयासमुदाहृताः ॥ १५२ ॥

---

१ वेतसोऽत्र गन्धिनः इति ख्यातः । गन्धमुस्त इत्युत्तरदेशे यस्य प्रसिद्धिः प्लक्ष इति वटः अथवा पर्कटीत्यश्वत्थभेदः ॥

अर्थ-गूलर, वट, पीपल, वेतस और पिलखन इन पांचको क्षीरिवृक्ष कहतेहैं ॥ १५२ ॥

आम्रजम्बूकपित्थानांबीजपूरकबिल्वयोः ॥
गन्धकर्मणिसर्वत्रपत्राणिपंचपल्लवम् ॥ १५३ ॥

अर्थ-आम, जामुन, कैथ, बिजौरानींबू और बेल, इन पांचोंको पंचपल्लव कहतेहैं। इनका प्रयोग सर्वत्र गन्धकर्ममें होताहै ॥ १५३ ॥

पिप्पलीपिप्पलीमूलंचव्यचित्रकनागरम् ॥
पंचकोलमिदंप्राहुःपंचोषणमथापरे ॥ १५४ ॥

अर्थ-पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीतामूल और सोंठ इन पांचको पंचकोल या पंचोषण कहते हैं ॥ १५४ ॥

पंचकोलंसमरिचंषड्रूषणमुदाहृतम् ॥ १५५ ॥

अर्थ-पंचकोलके साथ मिर्चका संयोग करनेसे तिसको षडूषण कहते हैं ॥ १५५ ॥

बिल्वश्योनाकगाम्भारीपाटलागणिकारिका।
एतन्महत्पंचमूलंसंज्ञयासमुदाहृतम् ॥ १५६ ॥

अर्थ-बेल, श्योनाक, गाम्भारी, पाढ़ल, अरणी, इन पांचको महत् पंचमूल कहते हैं ॥ १५६ ॥

शालपर्णीपृश्निपर्णीबृहतीद्वयगोक्षुरम्।
कनीयःपंचमूलंस्यादुभयंदशमूलकम् ॥ १५७ ॥

अर्थ-शालपर्णी (शरिवन) पिठवन, बृहती, कटेरी, और गोखरू, इन पांचको स्वल्प पंचमूल कहते हैं; इन दोनों पंचमुलको इकट्ठा करनेंसे दशमूल कहा जाताहै ॥ १५७ ॥

कुशःकाशःशरोदर्भइक्षुश्चैवतृणोद्भवम् ।
पंचतृणमिदंख्यातंतृणजंपंचमूलकम् ॥ १५८ ॥

अर्थ–कुश, कांस, शर, दर्भ और गन्ना, इन पांचको पंचतृण अथवा पंचमूल कहते हैं ॥ १५८ ॥

विदारीचाजश्रृङ्गीचरजनीसारिवामृतम् ।
वल्लीजंपंचमूलंचकथितंमुनिपुंगवैः ॥१५९॥

अर्थ–विदारीकंद मेढाश्रृङ्गी, हलदी, अनन्तमूल और गिलोय इन पांचको मुनियोंनें वल्लीज पंचमूल कहाहै ॥१५९॥

[1]करमर्दःश्वदंष्ट्राचहिंस्राझिंटीशतावरी ।
कण्टकाख्यंपंचमूलंनिर्दिष्टंसूक्ष्मबुद्धिभिः ॥१६०॥

अर्थ–करंज, गोखरू, तालमखाना, पियावासा, शतावरी इन पांचको कण्टकाख्यमूल पंडितलोगोंनें कहा है ॥ १६० ॥

ऋद्धिर्वृद्धिश्चमेदेद्वेतथार्षभकजीवकौ ।
काकोलीक्षीरकाकोलीत्यष्टवर्गःप्रकीर्त्तितः ॥१६१॥

अर्थ–ऋद्धि, वृद्धि, मेद, महामेद, ऋषभक, जीवक,काकोली और क्षीरकाकोली इन आठके मेलको अष्टवर्ग कहते हैं॥१६१॥

अष्टवर्गश्चपर्णिन्यौजीवन्तीमधुकंतथा ।
जीवनीयगणःप्रोक्तोजीवनश्चपुनस्ततः ॥१६२॥

अर्थ–अष्टवर्गके साथ मसवन, मुगवन, जीवन्ती और मुलहठीका संयोग किया जाय तो इसको जीवनीयगण कहते हैं ॥ १६२ ॥

---

१ "करमर्द" करंजा । "श्वदंष्ट्रा" गोक्षुरकः । "हिंस्रा" कुडवकाली–तालमखाना । स्पष्टमन्यत् ।

शोभांजनस्ययद्बीजंतच्छ्वेतमरिचंस्मृतम् ॥१६३॥

अर्थ-सैंजनेके बीजको श्वेतमरिच कहते हैं ॥ १६३ ॥

ज्येष्ठाम्बुतण्डुलाम्बुस्यादुष्णाम्बुचसुखोदकम् १६४

अर्थ-चावलके पानीको ज्येष्ठाम्बु और गरमजलको सुखोदक कहते हैं ॥ १६४ ॥

गुडयोगाद्गुडाम्बुस्याद्गुडवर्णरसान्वितम् ॥ १६५ ॥

अर्थ-गुड़की समान रस, गन्ध और रंगवाले गुड़युक्त जलको गुडाम्बु कहते हैं ॥ १६५ ॥

निरस्थिपिशितंपिष्टंस्विन्नंगुडसमन्वितम् ।
कृष्णामरिचसंयुक्तंवेसवारइतिस्मृतः ॥ १६६ ॥

अर्थ-अस्थिहीन मांसको पीसकर गुड़, घी, पीपल और मिर्चके संयोगसे पाक किया जाय, तो इसे वेशवार कहते हैं ॥ १६६ ॥

काञ्जिकंव्युषितंपक्वंमूलकंत्वम्लमूलकम् ॥१६७॥

अर्थ-मूली, कांजीमें भिजोरखकर बासी करके पकाली जायतो इसको अम्लमूलक कहते हैं ॥ १६७ ॥

दध्नःससारकस्यात्रतक्रंकट्वरमिष्यते ॥१६८॥

अर्थ-मक्खनयुक्त दहीके तक्रको कट्वर कहते हैं ॥ १६८ ॥

तक्रंह्युदश्विन्माथितंपादाम्ब्वर्द्धाम्बुनिर्जलम् १६९॥

अर्थ-दहीमें चौथाई जल मिलाकर तिसको मथै, इसका नाम तक्र है आधे, भाग जल मिले दहीको मथनेसे तिसको उद-श्वित् कहते हैं और निर्जल दही मथाजाय तो तिसको मथित कहते हैं ॥ १६९ ॥

दध्नासहपयःपक्वंसाभवेद्दधिकूर्चिका ।

तक्रेणयत्पयःपक्वंसाभवेत्तक्रकूर्चिका ॥१७०॥

अर्थ–दहीके साथ दुग्धपाक करनेसे तिसको दधिकूर्च्चिका और तक्र (मट्ठा) के साथ दुग्ध पाक करनेसे तिसको तक्र-कूर्च्चिका कहते हैं ॥ १७० ॥

कन्दमूलफलादीनिसस्नेहलवणानिच ।
यत्रद्रव्येऽभियुज्यन्तेतच्छुक्तमभिधीयते॥१७१

अर्थ–तरलद्रव्यमें कन्द, मूल, फल, तेल और लवणादि भिजोरक्खे तौ उस तरल द्रव्यको शुक्त कहतें हैं ॥ १७१ ॥

सीधुरिक्षुरसैःपक्वैरपक्वैरासवोभवेत् ॥ १७२ ॥

अर्थ–गन्नेका रस पकाकर जो मद्य तैयार किया जाता है तिसको सीधु और कच्चे रससे जो मद्य तैयार होताहै, तिसको आसव कहते हैं ॥ १७२ ॥

मैरेयंधातकीपुष्पगुडधान्याम्लसंहितम् ॥ १७३ ॥

अर्थ–धायफूल, गुड और धान्याम्लके मेलसे जो मद्य तैयार होताहै तिसको मैरेय कहतेहैं ॥ १७३ ॥

आरनालन्तुगोधूमैरामैःस्यान्निस्तुषीकृतैः ॥
पक्वैर्वासन्धितैस्तत्तुसौवीरसदृशंगुणैः ॥१७४॥

अर्थ–पके या कच्चे भुस्सीरहित गेहूंका सन्धान करके जो पदार्थ तैयार होताहै, तिसको आरनाल कहते हैं, इसका गुण सौवीरकी समानहै ॥ १७४ ॥

मन्थनीनूतनाधार्याकटुतैलेनलेपिता ॥
निर्म्मलेनाम्बुनापूर्यातस्यांचूर्णंविनिक्षिपेत् १७५॥
राजिकाजीरलवणहिंगुशुण्ठीनिशाकृतम् ॥

निक्षिपेद्वटकांस्तत्रभाण्डस्यास्यंचमुद्रयेत् ॥
ततोदिनत्रयादूर्द्धमम्लाःस्युर्वटकाध्रुवम् ॥१७६॥

अर्थ–मथनेंके नये पात्रमें कडवे तेलका लेप करकें उसमें निर्मल जलभरे, श्वेतसरसों, जीरा, सेंधा, हींग, सोंठ और कच्ची हलदीका चूर्ण यह सब एकसाथ डालकर गोलियें बनाय इसपात्रमें धरे; फिर पात्रका मुख बन्दकरदे। बादको दूसरे दिन रस खट्टा होतेही जानलेंकि वटक तैयार होगये ॥ १७५ ॥ १७६ ॥

तिलतण्डुलमाषैश्चकृशरात्रिशरेतिसा ॥ १७७ ॥

अर्थ–तिल, चावल और उर्दसे तैयार हुए यवागूको कृशरा (खिचडी) वा त्रिशरा कहते हैं ॥ १७७ ॥

यन्मस्त्वादिशुचौभाण्डेसगुडक्षौद्रकांजिकम् ।
धान्यराशौत्रिरात्रस्थंशुक्तंचुक्रंतदुच्यते ॥ १७८ ॥

अर्थ–निर्मल पात्रमें गुड, शहद और कांजीके मेलसे मस्तुआदि धान्यराशिमें तीन रात धरके ग्रहण किया जाय तिसको शुक्त चुक्र कहते हैं ॥ १७८ ॥

यदपक्वौषधाम्बुभ्यांसिद्धंमद्यंसआसवः ॥ १७९ ॥

अर्थ–कच्ची औषधि और जलसे तैयार हुए मद्यको आसव कहते हैं ॥ १७९ ॥

अरिष्टःक्वाथसिद्धःस्यात्सम्पक्वोमधुरद्रवैः ॥१८०॥

अर्थ–पके हुए क्वाथ और मधुररसयुक्त द्रव्य (तरल) पदार्थसे सिद्धहुए मद्यको अरिष्ट कहते हैं ॥ १८० ॥

आश्रितश्चापिसीधुःस्यादित्याहुस्तद्विदोजनाः१८१

" आश्रितइतिसम्यक्पक्वः "

अर्थ-भलीभांतिसे पकेहुए मद्यको सीधु कहते हैं ॥ १८१ ॥

सुरामण्डःप्रसन्नास्यात्तत्रकादम्बरीघना ॥
तदधोजगलोज्ञेयोमेदकोऽजगलोघनः ॥ १८२ ॥

अर्थ-सुराके ऊपरवाले स्वच्छ भागको प्रसन्ना कहतेहैं। प्रसन्नाकी वनिस्वत कादम्बरीनामक मद्य घना होताहै, कादंबरीके निचले मद्यको जगल कहतेहैं । भेदकमद्य जगलमद्यकी वनिसबत गाढाहै ॥ १८२ ॥

पक्कासाहृतसाराचसुराबीजंचकिल्लकम् ॥ १८३॥

अर्थ-सारहीन सुराको वक्कस और सुराबीजको किल्लक कहतेहैं ॥ १८३ ॥

यत्तालखर्जूररसैरावृतासैववारुणी ॥ १८४ ॥

अर्थ-ताल और खजूरके रस करके अलग २ सन्धान करके जो मद्य तैयार होताहै तिसको वारुणी मद्य (ताडी (कहते हैं ॥ १८४ ॥

गुडाम्बुनासतैलेनकन्दशाकफलैस्तथा ॥
आसुतंचाम्लतांयातंगुडशुक्तंतदुच्यते॥१८५॥

अर्थ-गुडका जल, तेल और विविध कन्दशाक और फल यह सब इकट्ठे संधान करके जब अम्लरसयुक्तहो जांय तब इसको गुडशुक्त कहा जाताहै ॥ १८५ ॥

एवमेवेक्षुशुक्तंस्यान्मृद्वीकासम्भवंतथा॥१८६॥

अर्थ-ऊपर कही रीतिसे गन्नेके रस और दाखका सन्धान होतो उसे शुक्त कहतेहैं ॥ १८६ ॥

तुषाम्बुचासुतंज्ञेयंमाषैर्विदलितैर्यवैः ।
सुनिस्तुषैश्चपक्कैश्चसौवीरंचासुतंभवेत् ॥ १८७ ॥

अर्थ–उर्द और जौको दलकर संधान करनेंसे तिसको तुषाम्बु कहते हैं; और भुस्सीहीन पक्के जौके सन्धानसे कियाजाय, तिसको सौवीर कहते हैं ॥ १८७ ॥

कुल्माषोधान्यमण्डेनचासुतंकांजिकंभवेत्॥१८८॥

अर्थ–धान्यमांडके साथ अर्द्धसिद्ध गोधुमादिका संधान होनेसे कांजी तैयार होती है ॥ १८८ ॥

अन्यत्यदाहचर : ।

भृष्टान्माषतुषान्सिद्धान्यवचूर्णसमन्वितान् ॥
आश्रितानम्भसातद्वज्जातंतच्चतुषोदकम् ॥१८९॥

अर्थ–चरकमुनिनें कहाहै–उर्दकी भुस्सी भुनाकर पकावै। फिर उसमें जौका आटा मिलाकर कांजी तैयार करनेंकी विधिके अनुसार जल डालकर भिगोरक्खै। जब खट्टा होजाय तब तुषोदकको तैयार हुआ जानें ॥ १८९ ॥

आशुधान्यंक्षोदितश्चवालमूलन्तुखण्डशः ।
कृतंप्रस्थमितंपात्रेजलंतत्राढकंक्षिपेत् ॥ १९० ॥
तावत्सन्धीयसंरक्षेद्यावदम्लत्वमागतम् ।
काञ्जिकंतत्तुविज्ञेयमेतत्सर्वत्रपूजितम् ॥ १९१ ॥

अर्थ–कूटेहुए आशुधान्य ८ सेर, कच्चीमूलीके टुकडे २ सेर और जल १६ सेर, इन सबको इकट्ठा साफ बर्त्तनमें सन्धान करके रक्खे, फिर खट्टा होतेही कांजीको तैयार हुआ जानें और सब कामोंमें उसका व्यवहार करे १९०।१९१

शिण्डाकीचासुताज्ञेयामूलकैःसर्षपादिभिः ॥१९२

अर्थ–मूली और सरसों आदिके सन्धानसे बनेहुए मद्यको शिण्डाकी कहतेहैं ॥ १९२

जम्बीरस्वरसप्रस्थंमधुनःकुडवन्तथा ।
तावच्चपिप्पलीमूलादेकीकृत्यघटेक्षिपेत् ॥
धान्यराशौस्थितंमासंमधुशुक्तंतदुच्यते ॥ १९३॥

अर्थ–जंबीरीनींबूका रस एक प्रस्थ (२ सेर) शहद ऽ॥ सेर पीपला मूलऽ॥ यह सब एक घडेमें रखके एक मासतक नाजके ढेरमें रक्खै, तो मधुशुक्त तैयार होताहै १९२ १९३

तक्रंकपित्थचांगेरीमरिचाजाजिचित्रकैः ।
सुपक्वंषडयूषोऽयमयंकाम्बलिकोऽपरः ॥ १९४ ॥
दध्यम्ललवणस्नेहतिलमाषसमन्वितः ।
संज्ञाप्रमथ्याविहितायोगेदीपनपाचने ॥ १९५ ॥

अर्थ–मट्ठा, कैथ, आमडा, मिर्च, जीरा और चीता यह सब इकट्ठे पकाकर जूष बनावै, इसको षडयूष कहतेहैं और इन सब चीजोंके साथ दही, खट्टे पदार्थ, सेंधा घृतादि स्नेह, तिल और उर्दका संजोग करके पाक करनेसे तिसको काम्बलिक जूष कहते हैं। इसका दूसरा नाम प्रमथ्याहै । अग्निके उकसाने और हाजमेके योगमें यह विशेष फलदायी है ॥ १९४ ॥ १९५ ॥

द्रवेणातोभृतास्तेषुस्तर्पणंलाजसक्तवः ॥ १९६ ॥

अर्थ–खीलोंके सत्तू द्रव (तरल) द्रव्यसे मिला लिये जाँय तो इनका यह मेल तर्पण कहा जाताहै ॥ १९६ ॥

सक्तवःसर्पिषायुक्ताःशीतवारिपरिप्लुताः ।
अनत्यच्छातिसान्द्राश्चमन्थइत्याभिधीयते ॥१९७॥

अर्थ–घीमें मलेहुए सत्तू, शीतल जलमें डुबाकर अधिक स्वच्छ या अधिक घने नहीं इसप्रकारसे मिलजानेपर मन्थ कहे जाते हैं ॥ १९७ ॥

क्वाथ्यमानन्तुयत्तोयंनिष्फेनंनिर्म्मलीकृतम् ।
भवत्यर्द्धावशिष्टन्तुतदुष्णोदकमिष्यते ॥ १९८ ॥

अर्थ-निर्मलीफल और गोमेदक (मणिविशेष) आदिसे निर्मलकिये आधे रहे सिद्ध जलको उष्णोदक कहते हैं ॥ १९८ ॥

चिकित्सितंव्याधिहरंपथ्यंसाधनमौषधम् ।
प्रायश्चित्तंप्रशमनंप्रकृतिस्थापनंहितम् ॥ १९९ ॥
विद्याद्भेषजनामानितच्चापिद्विविधंस्मृतम् ।
सुस्थस्योजस्करंकिंचित्किञ्चिदार्त्तस्यरोगनुत् २००

अर्थ-चिकित्सित, व्याधिहर, पथ्य, साधन औषध, प्रायश्चित्त, प्रशमन, प्रकृति, स्थापन और हित, यह सब औषधियोंके नामहैं । यह औषधेंभी दो प्रकारकी हैं; जैसे;-कोई २ औषधि निरोगीको बलकारकहै और कोई औषधि रोगीके रोगका नाश करनेवालीहै ॥ १९९ ॥ २०० ॥

परिभाषाप्रदीपसंग्रहकात्तृतीयखंडसमाप्त ।

अथ पंचकर्माण्याह ।

दोषाःकदाचित्कुप्यन्तिजिताःकालेनपांचनैः ।
येतुसंशोधनैःशुद्धानतेषांपुनरुद्भवः ॥ १ ॥

अर्थ-वायु, पित्त और कफ इन तीनोंके कुपित होनेसे यथा समयमें दोषका नाश करनेवाले लंघन और पाचनादिसे कुपित दोष दब जाताहै । जिन दोषहरनेवाली औषधियोंसे दोष शुद्ध होताहै, वह फिर उत्पन्न नहीं होता ॥ १ ॥

---

१ पाचनैरिति लंघनपाचनादिभिर्दोषहारिभिरित्यर्थः ।

वमनंरेचनंनस्यंनिरूहश्चानुवासनम् ।
ज्ञेयंपंचविधंकर्म्ममात्रातस्यप्रयुज्यते ॥
यदावहेद्वहिर्दोषान्पंचधाशोधनंहितत् ॥ २ ॥

अर्थ–वमन, विरेचन, (दस्त–जुलाब) नस्य, निरूह और अनुवासन, इन पांच क्रियाओंको योग्य मात्रासे प्रयोग करके शरीरके दोषको शुद्ध करले ॥ २ ॥

ननस्यंन्यूनसप्तादेःनातीताशीतिवत्सरे ।
नचोनद्वादशेधूमःकवलोनोनपंचमे ॥ ३ ॥
नशुद्धिरूनदशमेनचातिक्रान्तसप्ततौ ।
नन्यूनषोडशाशीतिसप्ततौरक्तमोक्षणम् ॥
आजन्ममरणाच्छस्तःप्रतिमर्षस्तुसर्वदा ॥ ४ ॥

अर्थ–सातवर्षसे नीचे और अस्सी वर्षसे अधिक उमर वालेपर नस्यका प्रयोग न करै । १२ वर्षकी उमरसे कमबालकको धूम, पांचवर्षसे कम उमरके बालकको वमन और विरेचनन करावे सत्तर वर्षसे अधिक उमरवालेकोभी यहप्रयोग न करावै। १६वर्षसे कम अथवा ७०वर्षसे अधिक उमरवालेका रक्तमोक्षण (फस्तादि) कराना ठीक नहीं, प्रतिमर्षका, जन्मसे लेकर जीवितकालतक सदाही व्यवहार होसकता है ॥ ३ ॥ ४ ॥

तत्रादौवमनमाह ।

पूर्वाह्णेपाययेत्पीतंजानुतुल्यासनेस्थितः ।
तन्मनाजातहृल्लासप्रसेकश्छर्दयेत्ततः ॥ ५ ॥

अर्थ–वमनकी विधि कही जातीहै । प्रातःकालही औषधिका सेवन करके रूईके आसनपर जांघोंके बल बैठ एकाग्रचित्तसे वमनकी चिन्ता करे, इसमें पहले हृल्लास

(वमनवेग) फिर प्रसेक (मुखस्राव) और फिर वमन होताहै ॥ ५ ॥

चरकस्त्वाह ।

माधवप्रथमेमासिनभस्यप्रथमेपुनः।
सहस्यप्रथमेचैववाहयेद्दोषसंचयम् ॥ ६ ॥

अर्थ-चरकमुनि कहते हैं कि, वैशाख, भाद्र और चैत्र मासके प्रथममैं देहमें इकट्ठे हुए दोषोंको निकाले ॥ ६ ॥

अन्यच्च ।

मधौसहेननभसिमासिदोषांस्तुवाहयेत् ॥ ७ ॥

"मधौ" "चैत्रेमासि" "सहे" अग्रहायणे, 'नभसि श्रावणे' दोषान् वाहयेदित्यर्थः ।

अर्थ-चैत्र, अग्रहायण और श्रावणमासमें एकत्र हुए दोषोंको निकाले ॥ ७ ॥

प्रत्युष्णवर्षशीताहिग्रीष्मवर्षाहिमागमाः ।
औषधस्यशरीरस्यतेभवन्तिविकल्पकाः ॥
" विकल्पकाइतिविरुद्धकार्यजनकाः " ॥ ८ ॥

अर्थ-ग्रीष्म, वर्षा, और शीतकालमें यदि क्रमानुसार अत्यन्त उष्ण, अत्यन्त वर्षा और अत्यन्त शीत अर्थात् ग्रीष्मकालमें अधिक गरमी, वर्षाकालमें अत्यन्त वर्षा इत्यादि होतो औषधिके और शरीरके लिये विरुद्धकार्यकारक होतीहै ॥ ९ ॥

उपयुक्तकालमाह ।

प्रावृट्शुक्लनभौज्ञेयौशरदूर्ज्जसहौपुनः ।

---

१ माधवप्रथमे मासीति वैशाखप्रथमे भागे, भाद्रस्य प्रथमें, पौषस्य प्रथमे च दोषसंचयं दोषाणां संचयमुपचयं वाहयेत् सारयेदित्यर्थः ।

फाल्गुनश्चमधुश्चैववसन्तःशोधनंप्रति ॥ ९ ॥

अर्थ–संशोधनकी क्रिया आषाढ और श्रावण प्रावृट्कालमें, कार्तिक और अग्रहायण शरत्कालमें, फागन और चैत वसन्तकालमें प्रयोग करे ॥ ९ ॥

क्रमात्कफःपित्तमथानिलश्च
यस्येतिसम्यग्वमितःसइष्टः ॥
हृत्पार्श्वमूर्द्धेन्द्रियमार्गशुद्धौ
तनोर्लघुत्वेऽपिचलक्ष्यमाणे ॥

आमाशयस्थःकफस्तस्मात् कफश्रुत्या तस्यप्रथमोल्लेखः । ततस्तदधःपित्ताशयस्तस्मात्पित्तम् । पक्वाशयस्तदधस्ततोऽनिलः । एतिगच्छति । क्रमादित्यनुक्रमात् ॥ १० ॥

अर्थ–कफ,पित्त और वायु भली भांतिसे धीरगामीहो और हृदय, बगल, मस्तक, इन्द्रिय और समस्त स्रोत शुद्ध होजाँय,शरीरमें हलकापन आजाय, तो जानले कि, वमनक्रिया ठीक हुई ॥ १० ॥

कफप्रसेकःस्वरभेदतन्द्रा
निद्रास्यदौर्गन्ध्यविषोपसर्गाः ॥
गुरुत्वकासग्रहणीप्रदोषा-
नसान्तिजन्तोर्वमितःकदाचित् ॥ ११ ॥

अर्थ–भलीभांतिसे वमनक्रिया करानेपर कफका निकलना, स्वरभेद, तन्द्रा, निद्रा, मुखकी दुर्गन्ध, विषके उपद्रव,

शरीरका भारीपन, खाँसी और ग्रहणीआदि समस्त रोग कभी नहीं होते ॥ ११ ॥

असद्वमितेदोषमाह।

दुश्छर्दितेस्फोटककोठकंडूः ॥
हृत्खाविशुद्धिर्गुरुगात्रताच ।
खमिन्द्रियमतःसर्वेन्द्रियस्याविशुद्धित्वंसामान्यात्
हृद्धृदयम्एतयोरविशुद्धिरित्यर्थः ॥ १२ ॥

अर्थ-असम्यक् (अनियमित) वमनसे फोडा, कब्ज, और दाह उत्पन्न होतेहैं हृदय, सोतें, और इन्द्रियोंके शुद्ध न होनेसे देहमें भारीपन होता है ॥ १२ ॥

अतिवमितेदोषमाह।

तृण्मोहमूर्च्छानिलकोपनिद्रा ।
बलातिहानिर्वमितेतिविद्यात् ॥ १३ ॥

अर्थ-अधिक वमनसे प्यास, मोह, मूर्च्छा, वायुका कोप, नींदका नाश और बलहानि इत्यादि लक्षण उत्पन्न होतेहैं ॥ १३ ॥

सुस्थवृत्तिमभिप्रेत्यव्याधौव्याधिवशेनतु ।
कृत्वाशीतोष्णवृष्टीनांप्रतीकारंयथायथम् ॥
प्रयोजयेत्क्रियांप्राप्तांक्रियाकालंनहापयेत् ॥ १४ ॥

अर्थ-देहकी सुस्थतापर दृष्टि रखके व्याधिके अनुसार शीत ग्रीष्म और वर्षाका प्रतीकार करके योग्य समयमें रोगको दूर करनेकी चेष्टाकरे, चिकित्साके कालको उल्लंघना उचित नहीं १४

अथ वमनभेषजमात्रामाह।

क्वाथ्यद्रव्यस्यकुडवंस्नापयित्वाजलाढके ।

चतुर्भागावशिष्टन्तुवमनेष्ववतारयेत् ॥ १५ ॥

अर्थ–क्वाथ्य द्रव्य आधसेर लेकर सोलहसेर जलमें पकावै। जब चौथाई भाग रहजाय तो उतारकर यह जल वमनके लिये प्रयोगकरे ॥ १५ ॥

क्वाथ्यद्रव्यपलेवारिप्रस्थार्द्धंपादशेषितम् ।
कर्षप्रदायकल्कस्यमधुसैन्धवयोस्तथा ॥ १६॥
सुखोष्णंवितरेद्धांतौमधूष्णंस्यान्नदोषकृत् ।
प्रच्छर्द्दनेनिरूहेचमधूष्णंनाविरुद्धते ॥ १७ ॥
अपक्वपाकमास्वेवतयोर्यस्मान्निवर्त्तयेत् ।
जात्यधोदोषमादायपच्यमानंविरेचनम् ॥१८॥
गुणोत्कर्षात्तुजातूर्द्धमपक्वंवमनंपुनः ।
"तयोरितिवमनविरेकयोःपक्वापक्वयोरित्यन्वयः" १९

अर्थ–आठतोला क्वाथ्य द्रव्य ग्रहण करके २ सेर जलमें सिद्धकरे, जब चौथा अंश रहजाय तब उतारले, तिसमें १ तो॰ शहत और १ तो॰ सैंधानोंन प्रक्षेपदेकर कुछ एक गरमरहते हुए वमनके लिये प्रयोगकरे ॥ १ ॥ शहत, उष्णतादोषवाला नहीं होता, क्योंकि वमनमें और निरूहमें उष्णमधु विरुद्ध नहीं हैं। क्योंकि वह परिपाक नहीं होसकता । वमन और विरेचक औषधि प्रयोगकरने पर थोडेही समयमें निकल जाती है तिनमें विरेचक औषधि प्रयोजित होने पर परिपाक हो दोषको ग्रहण करके तिसके साथ नीचे जानेके पीछे मलद्वारसे होकर बाहर निकलजाती है। वमनकारक औषध प्रयोग करनें पर अपने गुणकी श्रेष्ठतासे ऊपरको जाय विनापके ही बाहर होजाती है ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

वमननिषेधमाह।

नवामयेत्तैमिरिकंनगुल्मिनं
नचापिपाण्डूदररोगपीडितान्।
स्थूलक्षतक्षीणकृशातिवृद्धा-
नर्शोऽर्दिताक्षेपकपीडितांश्च ॥ २० ॥
रूक्षेप्रमेहेतरुणेचगर्भे
गच्छत्यथोर्द्ध्वंरुधिरेचतीव्रे।
दुष्टेचकोष्ठेक्रिमिभिर्मनुष्यं
नवामयेद्वर्चसिचातिवृद्धे ॥ २१ ॥
एतेप्यजीर्णव्यथितावम्यायेचविषातुराः।
अत्युल्बणकफायेचतेचस्युर्मधुकाम्बुना॥२२॥
"तैमिरिकादयोपिएताद्दशावस्थायांवम्याइतिशेषः॥

अर्थ–रतोंधा या धुंध, गुल्म, पाण्डु और उदररोगसे पीडित, स्थूल, क्षतक्षीण, दुबला, अतिवृद्ध, बवासीररोगी, अर्दित, आक्षेप, रूक्ष और प्रमेह रोगवालेको, बालक, गर्भवती, ऊर्द्ध्वगामी तीव्ररक्तपित्तरोगी, क्रिमिकरके जिसका कोठा बिगडगया है और कब्ज है, इनको वमनकारक औषधि नदे। परन्तु जो यह अजीर्णरोगसे पीडित,विषरोगाक्रान्त या अत्यन्त बढे हुए कफसे पीडित हों तो मुरहठीक्काथके साथ उचित वमनकारक औषधिप्रयोग कराके वमन करावै॥२०॥२१॥२२

मन्दाग्निर्वेदनामन्द।गुरुस्तिमितकोष्ठता।
सोत्क्लेशाचारुचिर्यस्यसगुल्मीवमनोपगः॥२३॥

अर्थ–गुल्मरोगवालेको अग्निकी मन्दता, पीडा, शरीरका भारीपन, कोठेका बंध जाना, शरीरका झनझनाना और

अरुचि दिखाई दे तो तिसको वमनकारक औषधिका प्रयोग करावै ॥ २३ ॥

शरत्कालेवसन्तेचप्रावृट्कालेचदेहिनाम् ।
वमनंरेचनंचैवकारयेत्कुशलोभिषक् ॥
तथावमनसात्म्यश्चधीराचित्तंचवामयेत् ॥२४॥

अर्थ–शरत्, वसन्त और वर्षा इन तीन ऋतुओंमें वमन और विरेचन कराना उचित है। जिनको वमनका अभ्यास है और जो धीर चित्तवाले हैं तिनको वमन करावै ॥ २४ ॥

विषदोषेस्तन्यरोगेमन्देऽग्नौश्लीपदेऽर्बुदे ।
विसर्पकुष्ठहृद्रोगमेहाजीर्णभ्रमेषुच ॥ २५ ॥
विदारिकाऽपचीकासश्वासपीनसवृद्धिषु ।
अपस्मारज्वरोन्मादेतथारक्तातिसारिषु ॥२६॥
नासाताल्वोष्ठपाकेषुकर्णस्रावेऽधिजिह्वके ।
गलगण्डेऽतिसारेचापित्तेश्लेष्मगदेतथा ॥
मेदोगदेऽरुचौचैववमनंकारयेद्भिषक् ॥ २७ ॥

अर्थ–विषदोष,विसर्परोग,स्तन्यरोग, अग्निकी मंदता,श्लीपद (पांव आदिका सूजना)अर्बुदरोगमें,कुष्ठरोगमें,हृदयकेरोगमें,प्रमेहरोगमें, अजीर्णरोगमें, भ्रमरोगमें, विदारिकामें, बद्धहाजमेमें, खांसीमें, दमामें, पीनसमें, वृद्धिरोगमें, अपस्माररोगमें, ज्वरमें, उन्मादमें, रक्तातिसारमें,नासा, तालू और ओठके पाकमें, कानके वहनेमें, अधिजिह्वकरोगमें, कंठमालामें, अतिसारमें, पित्तश्लेष्माके रोगमें, मेदके रोगमें और अरुचिरोगमें वमनका प्रयोग कियाजाय ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

नवामनीयस्तिमिरीनगुल्मीनोदरीकृशः ।

नातिवृद्धोगर्भिणीचनस्थूलोनक्षतातुरः ॥ २८ ॥
मदार्त्तोबालकोरूक्षःक्षुधितश्चनिरूहितः ।
उदावर्त्तोर्द्ध्वरक्तीचदुश्छर्द्यःकेवलानिली ॥ २९ ॥
पाण्डुरोगीक्रिमिव्याप्तःपठनात्स्वरघातकः ।
एतेप्यजीर्णव्यथितावम्यायेविषपीडिताः ।
कफव्याप्ताश्चतेवम्यामधुकाथस्यपानतः ॥ ३० ॥

अर्थ–तिमिररोग, गुल्मरोग और उदररोगवालेको, दुर्बल, अतिवृद्ध, गर्भिणी, मोटे शरीरसे युक्त, क्षतरोगी, मदार्त्त, बालक, रूखीदेहवाला, भूंखा और जिसको निरूहणाक्रिया कराईगई है, उदावर्त्तमें, ऊर्द्धगतरक्तपित्तमें, वमन जिसको सहन न होसके, जिसकी वायु कुपित हुई है, पांडुरोगमें, क्रिमिरोगमें, अधिक पढनेसे जिनका स्वरभंग हुआहै तिनको वमनकारक औषधि न दे। जिनको यह रोगहैं यदि उनको अजीर्णरोग विषरोग और प्रबल कफरोग होतो मुलहठीका क्काथ पिलाकर वमन करावै ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

ग्रन्थान्तरस्यान्यांरसमात्रामाह ।

क्काथपानेनवप्रस्थाज्येष्ठामात्राप्रकीर्त्तिता ।
मध्यमाषण्मिताप्रोक्तात्रिप्रस्थाचकनीयसी ॥ ३१ ॥

अर्थ--वमनप्रयोगकेलिये मुलहठीका क्काथके जलपानकी प्रधानमात्रा नौ प्रस्थ, मध्यममात्रा छैः प्रस्थ और हीनमात्रा तीन प्रस्थ है (यहांपर १ प्रस्थसे साढेछय पल समझना चाहिये) ॥ ३१ ॥

प्रसङ्गादन्यौषधानाञ्चमात्रामाह ।

कल्कचूर्णावलेहानांत्रिपलंश्रेष्ठमात्रया ।
मध्यमंद्विपलंदद्यात्कनीयस्कंपलंभवेत् ॥ ३२ ॥

अर्थ–वमनप्रयोगके लिये औषधिका कल्क, चूर्ण और अवलेहकी श्रेष्ठमात्रा तीनपल, मध्यममात्रा दोपल और हीनमात्रा एकपल है ॥ ३२ ॥

वमनेचापिवेगाःस्युरष्टौपित्तान्तउत्तमाः ।
षड्वेगामध्यमावेगाश्चत्वारोऽप्यवरामताः ॥ ३३ ॥
वमनेचविरेकेचतथाशोणितमोक्षणे ।
सार्द्धत्रयोदशपलंप्रस्थमाहुर्मनीषिणः ॥ ३४ ॥

अर्थ–आठवार वमनका वेगहो तो वह श्रेष्ठवेग कहा जाया-करता है इसके पिछले वेगमें पित्त निकलता है । छःवार वेगहो तो उसे मध्यमवेग और चारबार होतो उसे हीनवेग कहते हैं; वमन, विरेचन और रक्तमोक्षणमें साढेछैः पलका (५२ तो०) एक प्रस्थ पंडितोंनें कहा है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

कफंकटुकतीक्ष्णोष्णैःपित्तंस्वादुहिमैर्ज्जयेत् ।
सुस्वादुलवणोष्णैश्चसंसृष्टंवायुनाकफम् ॥ ३५ ॥

इतिवमनम् ।

अर्थ–कटु, तीक्ष्ण और उष्णद्रव्यकरके कफ, मधुर और शीतल द्रव्यसे पित्त, और मधुर, लवण गरमद्रव्यसे वायुसंयुक्त कफ दब जाता है ॥ ३५ ॥

अथविरेचनमाह ।

(शार्ङ्गधरः)

स्निग्धस्विन्नस्यवान्तस्यदद्यात्सम्याग्विरेचनम् ॥३६॥

अर्थ–शार्ङ्गधर कहता है कि स्निग्ध, स्वेद और वमनक्रियाके पीछे विरेचन करावै ॥ ३६ ॥

अस्यगुणमाहसुश्रुतः ।

बुद्धेःप्रसादंबलमिन्द्रियाणां

धातुस्थिरत्वंज्वलनातिदीप्तिम् ।
चिराच्चपाकंवपुषःकरोति ।
विरेचनंसम्यगुपास्यमानम् ॥ ३७ ॥

अर्थ–सुश्रुत कहता है कि भलीभांतिसे विरेचन होनेंपर बुद्धि, बल और इन्द्रियोंकी प्रसन्नता, धातुओंकी स्थिरता होतीहै। अग्नि अत्यन्त दीप्त होती है और बहुतकालतक शरीरमें पक्कता उत्पन्न होती रहती है ॥ ३७ ॥

अवान्तस्यत्वधःस्रस्तोग्रहणींछादयेत्कफः ।
मन्दाग्निगौरवंकुर्य्याज्जनयेद्वाप्रवाहिकाम् ।
अथवापाचनैरामंबलासंचविपाचयेत् ।
"ग्रहणीअग्निवहधमनीतात्स्थ्यादग्निमाहुः
तंछादयेदितिशेषः ॥ ३८ ॥

अर्थ–विनावमन कराये विरेचक औषधिका प्रयोग करनेसे कफ नीचेको जाय ग्रहणीनामक नाडीको ढकके मन्दाग्नि, देहमें भारीपन और प्रवाहिकारोगको उत्पन्न करता है। इसकारण पहले वमन करावै या पाचक औषधिसे आम कफको पकाकर फिर विरेचक औषधिका प्रयोगकरे ॥ ३८ ॥

स्निग्धस्यास्नेहनैःकार्यस्वेदैःस्विन्नस्यरेचनम् ॥३९॥

अर्थ–स्नेहवालेको रूखे द्रव्यसे और प्रस्वेदयुक्तको स्वेदकारी द्रव्यसे विरेचन करावै ॥ ३९ ॥

शरदृतौवसन्तेचदेहशुद्धौविशेषतः ॥ ४० ॥

अर्थ–शरद और वसन्तऋतुमें शरीरको शुद्ध करनेके लिये विरेचनका प्रयोग अवश्य करना चाहिये ॥ ४० ॥

विरेकनिषेधमाह।

बालवृद्धावतिस्निग्धःक्षतक्षीणभयार्दितः।
श्रान्तस्तृषार्त्तःस्थूलश्चगर्भिणीचनवज्वरी ॥४१॥
नवप्रसूतानारीचमन्दाग्निश्चमदात्ययी।
शल्यार्दितश्चरूक्षश्चनविरेच्योभिषग्वरैः ॥ ४२ ॥

अर्थ–बालक, वृद्ध, अतिस्निग्ध, क्षत, क्षीण, भययुक्त-थकित, प्याससे आर्त, स्थूल, गर्भिणी, नवज्वरी, नई प्रसूती, स्त्री, मन्दाग्नियुक्त, मदात्ययान्वित, शल्यपीडित और रूखे पुरुषको विरेचन न करावै ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

विरेच्यमाह।

जीर्णज्वरीगरव्याप्तोवातरक्तीभगन्दरी।
अर्शःपाण्डूदरग्रन्थिहृद्रोगारुचिपीडिताः॥ ४३ ॥
योनिरोगप्रमेहार्त्तगुल्मप्लीहव्रणार्दिताः।
विद्रधिच्छर्दिविस्फोटविषूचीकुष्ठसंयुताः ॥ ४४ ॥
कर्णनासाशिरोवक्रगुदमेढ्रामयार्दिताः।
प्लीहशोथाक्षिरोगार्त्ताःक्रिमिरोगानिलार्दिताः॥
शूलिनोमूत्रघातार्त्ताविरेकार्हानरामताः ॥ ४५ ॥

अर्थ–पुराने ज्वरसे घिरा, विषके दोषोंसे व्याप्त, वातरक्त, भगन्दर, बवासीर, पाण्डु, उदर, ग्रन्थि, हृद्रोग, अरुचि, योनिरोग, प्रमेह, गुल्म, तिल्ली, व्रण, बद, वमि, विस्फोट, विषूचिका, कुष्ठ, कर्णरोग, नासारोग, शिरोरोग, मुखरोग, गुह्यरोग, भेंढ्रके रोग, शोथ, नेत्ररोग, क्रिमिरोग, वायुसे उत्पन्न हुई पीडा, शूल और मूत्राघात इन रोगियोंको विरेचन-देना उचित है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

बहुपित्तोमृदुःप्रोक्तोबहुश्लेष्माचमध्यमः।
बहुवातःक्रूरकोष्ठोदुर्विरेच्यःसकथ्यते ॥ ४६ ॥

अर्थ-बहुतसे पित्तवालेको मृदुकोष्ठ, बहुतसे श्लेष्मावालेको मध्यकोष्ठ और बहुतसे वातवालेको क्रूरकोष्ठ या दुर्विरेच्य कहाजाता है ॥ ४६ ॥

तस्यमात्रामाह।

मात्रोत्तमाविरेकस्यत्रिंशद्वेगैःकफात्मकम्।
वेगैर्विंशतिभिर्मध्याहीनोक्तादशवेगकैः ॥ ४७ ॥
द्विपलंश्रेष्ठमाख्यातंमध्यमञ्चपलंभवेत्।
पलार्द्धंचकषायाणांकनीयस्कंविरेचनम् ॥ ४८ ॥

अर्थ-जितनी औषधिका सेवन करनेसे तीस दस्त हों तिसको श्रेष्ठमात्रा कहते हैं, विरेचक औषधिकि जितनी मात्रा से २० दस्तहों तिसको मध्यम मात्रा और जिस विरेचक औषधिकि मात्राका सेवन करनेसे १० दस्तहों तिसको हीन मात्रा कहते हैं। विरेचक औषधिकी श्रेष्ठमात्रा दो पल, मध्यममात्रा एक पल और हीनमात्रामें अर्द्ध पल देनेका विधान है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

आनन्दसेनस्त्वाह।

पित्तेनस्यान्मृदुःकोष्ठःक्रूरोवातकफाश्रयात्।
मध्यमःसमदोषःस्यान्मात्रायोज्यानुरूपतः ॥४९॥
पलन्तुश्रेष्ठमाख्यातंमध्यन्त्वष्टपलंभवेत्।
कर्षमानंकनीयःस्याज्ज्ञेयंश्रेष्ठाद्यपेक्षया ॥ ५० ॥

अर्थ-आनंदसेन कहता है कि, पित्तकी अधिकाई होनेसे मृदुकोष्ठ, कफमिली वायुकी अधिकाईसे क्रूरकोष्ठ और दोष-

की समताके हेतु मध्यकोष्ठ होता है । इस कारण कोष्ठभेदसे विरेचक औषधिकी मात्रा योग्यतासे प्रयोग करे विरेचक औषधीकी प्रधानमात्रा १ पल, मध्यममात्रा अर्द्धपल और हीनमात्रा एक कर्ष (२ तो०) है । अतएव श्रेष्ठ और मध्यमादिका बिचारकरके विरेचक औषधिकी मात्रा प्रयोगकरै ॥ ४९ ॥ ५० ॥

वमनविरेकयोश्चतुर्द्धाविशुद्धिमाह ।

वैनिकीमाणिकाचापिअम्भकीनलिकीतथा ।
चतुर्विधाशुद्धिरुक्तावमनेचविरेचने ॥ ५१ ॥

अर्थ–वमन और विरेचनकी विशुद्धि चार प्रकारकी है, यथा, वैनिकी, माणिक्य, अम्भकी और नलिकी ॥ ५१ ॥

जघन्यमध्यप्रवरेतुवेगाश्चत्वारइष्टावमनेषडष्टौ ।
दशैवतेद्वित्रिगुणाविरेकेप्रस्थस्तथाद्वित्रिचतुर्गुणाश्च५२

अर्थ–चार वार वमन होनेंको जघन्यवेग कहते हैं, छयवार वमन होनेंको मध्यवेग और आठवार वमन होनेको श्रेष्ठ वेग कहते हैं । विरेचक औषधिसे दश वार विरेचन हो तो उसे हीनवेग, वीसदस्तहों तो मध्यवेग और ३० दस्तहों तो उसे श्रेष्ठ वेग कहते हैं । हीनवेगमें द्विगुण प्रस्थ, मध्यवेगमें त्रिगुण प्रस्थ और श्रेष्ठवेगमें चतुर्गुणप्रस्थका प्रयोग करना चाहिये ॥ ५२ ॥

---

१ जघन्यमिति जघन्ये वमने चत्वारो वेगाः मध्ये षड्वेगाः प्रवरेऽष्टवेगाः तथाच जघन्यविरेके दश वेगाः मध्यमे विरेके दशद्विगुणाः विंशतिरित्यर्थः।प्रवरे श्रेष्टे विरेके दशत्रिगुणास्त्रिंशद्वेगा इत्यर्थः।विरेके दोषमानेनापि जघन्यादित्वमाहुः । प्रस्थ इत्यादि । द्विगुणप्रस्थो जघन्ये, द्विगुणो मध्यमे, चतुर्गुणः प्रवरे इत्यर्थः ।पित्तान्तमिति।अत्यन्तिका शुद्धिर्विरेकार्द्धभेषजमात्रया कार्य्या, विरेके यत्प्रस्थादिना जघन्यत्वमुक्तं तदर्द्ध परिमाणेन जघन्यादित्वमपरं वमने ज्ञेयम् । कफान्तमिति । अतिरेकेनात्यन्तिकी शुद्धिरुक्ता ।

पित्तान्तमिष्टंवमनंकफान्तञ्चविरेचनम् ॥ ५३ ॥

अर्थ-जो वमनके पिछले वेगमें पित्त निकले और विरेचनके पिछले दस्तमें जो कफ निकले, तो वमन और विरेचनकी क्रियाको भलीभांतिसे सिद्ध हुआ जानें ॥ ५३ ॥

विरेकमाह।

द्वित्रान्साविट्कानपनीयवेगान्
मेयंविरेकेवमनेतुपीतम् ॥
क्रमात्कफःपित्तमथानिलश्च
यस्यैतिसम्यग्वमितःसइष्टः[1] ॥ ५४ ॥

अर्थ-विरेचनके दो या तीन वेग छोडकर (अर्थात् पहले दिनके आहारके मलका परिमाण दो या तीन वार है गिनें। और वमनके लिये औषधिकी जितनी मात्रा दी जातीहै, सो वमनके पहले वेगमें ही गिर जातीहै, बस उसको छोडकर गिनें ॥ ५४ ॥

हृत्पार्श्वमूर्द्धेन्द्रियमार्गशुद्धौ
तनोर्लघुत्वेऽपिचलक्ष्यमाणे ॥ ५५ ॥

अर्थ-जो वमनके करनेवालेके क्रमानुसार कफ, पित्त और वायु निकले और, हृदय, बगल, मस्तक और इन्द्रियों-

---

१ विरेके द्वित्रान् सविट्कान् वेगान् अपनीय त्यक्त्वा मेयं गणनीयं परिमाणं कार्य्यं, विरेकसंख्या कर्त्तव्येत्यर्थः । तथा वमने पीतमौषधमपनीय मानं कर्त्तव्यम् । वेगानामित्यर्थः। विरेके इति।पूर्वदिनाहारमलविरेकात् प्रथमतः वेगद्वयं त्रयं वा परित्यज्य संख्या कर्त्तव्या इति । वमनेपि पीतमौषधं प्रथमवेगेन बहिर्निःसरति, अतस्तत्र गणनीयमतोऽनन्तरं संख्या कार्येति दिक् ।

के सोते शुद्ध हो जांय, शरीर हलका होजाय, तो वमनक्रियाको भलीभांतिसे हुआ जानें ॥ ५५ ॥

स्रोतोविशुद्धीन्द्रियसम्प्रसादौ
लघुत्वमूर्ज्जोऽग्निरनामयत्वम् ॥
प्राप्तिश्चविट्पित्तकफानिलानां ।
सम्यग्विरिक्तस्यभवेत्क्रमेण ॥ ५६ ॥

" प्राप्तिरितिप्रवृत्तिरित्यर्थः "

अर्थ—जिसका जुलाब ठीक हो जाताहै उसके सोते शुद्ध, इन्द्रियें निर्मल, देहमें हलकापन, अग्निका उकसना, शरीरका स्वस्थपन होताहै । और मल, वायु, पित्त और कफकी उचित प्रवृत्ति होती है ॥ ५६ ॥

स्याच्छ्लेष्मपित्तानिलसंप्रकोपः
सादस्तथाग्नेर्गुरुताप्रतिश्या ॥
तन्द्रातथाछर्दिररोचकश्च ।
वातानुलोम्यंचनचैर्विरक्तेः (?) ॥ ५७ ॥

अर्थ—भलीभांतिसे विरेचन न हो, तो कफ, पित्त और वायुका कोप, मन्दाग्नि, शरीरका भारीपन, जुकाम, तन्द्रा, वमन, अरुचि होकर वायु, कुपित हो जाती है ॥ ५७ ॥

कफास्रपित्तक्षयजाऽनिलोत्थाः ।
सुप्त्यङ्गमर्दक्लमवेपनाद्याः ॥
निद्राबलाभावतमःप्रवेशाः ।
सोन्मादहिक्काश्चविरेचितेऽति ॥ ५८ ॥

अर्थ—अधिक विरेचन होनेंसे कफ, रक्त, पित्त, क्षय और वायुसे उत्पन्न हुए रोगमें अंगका अवसाद, शरीरमें

पीडा, क्लान्ति, कम्प, नींद, बलकी हानि, अन्धकार दीखना और उन्मादको देखना व हिचकीरोग उत्पन्न होता है ॥५८॥

विरेकनिषेधमाह।

क्षीणःक्षतोरःक्षतबालवृद्धा-
दीनोऽथशोषोभयशोकतप्तः ॥
श्रान्तस्तृषार्त्तोपरिजीर्णभोक्ता
गर्भिण्यधोगच्छतियस्यचासृक् ॥ ५९ ॥
नवप्रतिश्यायपरीतदेहो
नवज्वरीयाचनवप्रसूता ॥
कषायनिष्ठानविरेचनीयाः
स्नेहादिभिर्येत्वनुपस्कृताश्च ॥ ६० ॥

अर्थ–क्षीण, क्षत, उरक्षत, बालक, बूढा, दीन, शोथ, भीत, शोकयुक्त, थके हुए और प्यासेको और जिसको आहार नहीं पचता, अधोगामी, रक्तपित्तरोगी, नये जुकामवालेको, शराबखोर, नवज्वरी, थोडे दिनकी जच्चा स्त्री, सदा कषायका सेवी और स्नेहादि करके अनुपकारी रोगी विरेचनके योग्य नहीं है। बस इनपर विरेचनका प्रयोग न करे ॥ ५९ ॥ ६० ॥

विरेचनैर्यान्तिनराविनाश-
मज्ञप्रयुक्तैरविरेचनीयाः ॥
एतेनपित्तेनपरीतदेहान् ।
विरेचयेत्तानपिमन्दमन्दम् ॥ ६१ ॥

अर्थ–अज्ञान करके जो विरेचनके योग्यहो और उसे विरेचन कराया जायतो प्राणका नाश होजाता है, परन्तु

अत्यन्त बढे हुए पित्तसे आक्रान्त हुएको मृदुविरेचक औषधिसे विरेच न करावै ॥ ६१ ॥

अथनस्यमाह ।

नस्यभेदोद्विधाप्रोक्तोरेचनंस्नेहणंतथा ।
रेचनंकर्षणंप्रोक्तंस्नेहनंबृंहणंमतम् ॥ ६२ ॥
नस्यंतत्कथ्यतेधीरैर्नासाग्राह्यंयदौषधम् ।
नावणंनस्तकर्म्मेतितस्यनामद्वयंमतम् ।
"रेचनंकफादीनामित्यर्थः"॥ ६३ ॥

अर्थ—नास दो प्रकारके हैं यथा रेचन और स्नेहन । तिनमें रेचन नस्य कर्षणकारक और स्नेहन नस्य बृंहणकारकहै । नासिकासे धीरे २ जो औषधि ग्रहण कीजातीहै तिसको नस्य कहतेहैं । उसके दो नामहैं, नावण और नस्यकर्म ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

कफपित्तानिलध्वंसेपूर्वेमध्येऽपराह्णिके ।
दिनस्यगृह्यतेनस्यंरात्रावप्युत्कटेगदे ॥ ६४ ॥

अर्थ—कफकी शान्तिकेलिये प्रातःकालमें, पित्तकी शान्तिके लिये मध्याह्नकालमें और वायुकी शान्तिके लिये अपराह्णमें नस्यका प्रयोग करे; परन्तु कठोर रोग होनेपर रात्रिमेंभी नस्यका प्रयोग किया जासकताहै ॥ ६४ ॥

अन्यच्च ।

प्रतिमर्षोऽवपीडश्चनस्यंप्रधमनंतथा ।
शिरोविरेचनञ्चैवनस्तकर्म्मतुपंचधा ॥ ६५ ॥
ईषदुच्छिंघनात्स्नेहोयावद्वक्त्रं[1]प्रपद्यते ।

---

१ "यावद्रक्तम्" इतिपाठान्तरम् ॥

सस्तोनिषिक्तस्तंविद्यात्प्रतिमर्षप्रमाणतः ॥
प्रतिमर्षंचनस्यार्थंकरोतिनचदोषभाक् ॥ ६६ ॥

अर्थ–पांच प्रकारके नस्यकर्महैं यथा–प्रतिमर्ष, अवपीड, नस्य, प्रधमन और शिरोविरेचन । स्नेहवस्तु (तैलादि) नासिकाके छेदमें घुसाके ऊपरको सांस खेंचकर मुखसे निकाले तिसको प्रतिमर्ष कहतेहैं । योग्यमात्रासे प्रतिमर्षका प्रयोग करना चाहिये । स्नेहन और शोधन दोनों प्रकारके प्रयोजन दोषमूल न होवैं, इस प्रकारसे प्रतिमर्षका प्रयोग होना चाहिये ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

शोधनंस्तम्भनंतस्मादवपीडोद्विधामतः ।
आपीड्यदीयतेयस्मादवपीडस्ततःस्मृतः ॥६७॥

अर्थ–अवपीड दो प्रकारकेहैं, यथा–शोधन और स्तम्भन । पत्रादिके निकाले हुए रससे जो नस्य प्रयोग किया जाता है, तिसको अवपीड कहतेहैं ॥ ६७ ॥

स्नेहार्थंशून्यशिरसांग्रीवास्कन्धोरसांतथा ।
बलार्थंदीयतेस्नेहोनस्तःसर्वत्रवर्त्तते ॥ ६८ ॥

अर्थ–स्नेहरहित मस्तकमें स्नेह करनेके अर्थ और गरदन स्कंधा व छातीका बल बढानेके लिये जो स्नेहप्रयोग किया जाता है तिसको नस्य कहतेहैं ॥ ६८ ॥

अन्यच्च ।

अवपीडःप्रधमनंद्वौभेदावपरौस्मृतौ ।
शिरोविरेचनस्यार्थेतौतुदेयौयथायथम् ॥ ६९ ॥
कल्कीकृतादौषधाद्यःपीडितोनिष्णुतोरसः ।
सोऽवपीडःसमुद्दिष्टस्तीक्ष्णद्रव्यसमुद्भवः ॥ ७० ॥

अर्थ-नस्यके और दो प्रकारके भेदहैं, यथा-अवपीड और प्रधमन शिरके विरेचनको यथायोग्य मात्रासे इनका प्रयोग करे। तीक्ष्ण औषधि कूटकर रस निकाले, फिर यह रस नस्यके लिये प्रयोग करे, तिसको अवपीड कहतेहैं ॥ ६९॥ ७० ॥

षडंगुलाद्विवक्त्रायानाडीचूर्णंयथाधमेत् ।
तीक्ष्णंकोलमितंवक्त्रंवातैःप्रधमनंस्मृतम् ॥ ७१ ॥

अर्थ-छैःअंगुल लंबे दो मुखवाले खाली नलमें तीक्ष्ण औषधिका चूर्ण एकतोला भरकर फूंकसे नाकमें घुसावै, इसको प्रधमन कहतेहैं ॥ ७१ ॥

ऊर्द्ध्वजत्रुगतेरोगेकफजेचस्वरक्षये ।
अरोचकेप्रतिश्यायेशिरःशूलेचपीनसे ॥
शोथापस्मारकुष्ठेषुनस्यंवैरेचनंहितम् ॥ ७२ ॥

अर्थ-ऊर्द्ध्वजत्रुगतरोगमें, कफसे उत्पन्न हुए स्वरभंगमें, अरुचीरोगमें, जुकाममें, शिरके दर्दमें, पीनस, शोथ, मिरगी और कुष्ठ इन सबरोगोंमें रेचन नस्यका प्रयोगकरे ॥ ७२ ॥

भीरुस्त्रीकृशबालानांनस्यंस्नेहेनशस्यते ॥ ७३॥

अर्थ-डराहुआ, स्त्री, दुर्बल और बालक इनके लिये स्नेहननस्यप्रयोग करना चाहिये ॥ ७३ ॥

गलरोगेसन्निपातेनिद्रायांसविषेज्वरे ।
मनोविकारेकृमिषुयुज्यतेचावपीडनम् ॥७४॥

अर्थ-गलेके रोगमें, सन्निपातमें, नींदकी अवस्थामें, विषमज्वरमें, उन्मादादि मनके विकारमें और कृमिरोगमें, अवपीडनस्य देना चाहिये ॥ ७४ ॥

अत्यन्तोत्कटदोषेषुविसंज्ञेषुचदीयते।
चूर्णप्रधमनंधीरैस्ताद्धितीक्ष्णतरंयतः॥ ७५॥

अर्थ-अत्यन्त प्रबल दोष और अचेतनअवस्थामें चूर्ण औषधी नस्यमें धीरे २ से प्रयोगकरे; क्योंकि वह अत्यन्त तीक्ष्ण है। उस्से शीघ्रही उपकार दिखाई देता है॥ ७५॥

नस्यस्यस्नैहिकस्यात्रदेयास्त्वष्टौचबिन्दवः।
प्रत्येकशोनस्तकर्मनृणामितिविनिश्चयः॥ ७६॥

अर्थ-स्नेहननस्यकी मात्रा आठ बूंद है, इसप्रकारसे मनुष्योंका प्रत्येक नस्यकर्म वर्णन किया गया॥ ७६॥

अष्टवर्षस्यबालस्यनस्तकर्म्मसमाचरेत्।
अशीतिवर्षादूर्द्ध्वञ्चनावर्णनैवदीयते॥ ७७॥

अर्थ-आठ वर्षसे कम उमरके बालकको और ८० वर्षसे अधिक उमरवालेको नस्य न दे॥ ७७॥

निषेधमाह।

तथानवप्रतिश्यायीगर्भिणीगरदूषितः।
अजीर्णीदत्तबस्तिश्चपीतस्नेहोदकासवः॥ ७८॥
क्रुद्धःशोकाभितप्तश्चतृषार्त्तौवृद्धबालकौ।
वेगावरोधीस्नातश्चश्रान्तकामश्चवर्ज्जयेत्॥ ७९॥

इति नस्यम्।

अर्थ-जिसको नया जुकाम हुवा हो,गर्भिणी, विषदोषसे युक्त, अजीर्णरोगी, जिसने पिचकारीका कर्म कियाहो, स्नेह, जल, या आसवादिका पीनेवाला, क्रोधयुक्त, शोकाकुल, तृष्णासे आर्त, वृद्ध, बालक और वेगका (मलमूत्रके वेगका) रोकने-

वाला, नहायाहुआ, थकाहुआ, जिसको कामका उदय हुआहो, ऐसोंको नस्य नहीं देना चाहिये ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

अथानुवासनमाह ।

भवेत्सुखोष्णश्चतथानिरेतिसहसासुखम् !
विरिक्तस्त्वनुवास्यात्ससप्तरात्रात्परंतदा ॥८०॥

अर्थ–कुछेक गरम अवस्थामें अनुवासनका प्रयोग करनेंसे सहसा निकल जाता है, विरेचन प्रयोगके सातदिन पीछे अनुवासनका प्रयोगकरै ॥ ८० ॥

अन्यत्रचोक्तम् ।

विरेचनात्सप्तरात्रेगतेजातबलायवै ।
कृताहारायसायाह्नेबस्तिर्ज्ञेयोऽनुवासनः ॥८१॥
" अनुदिनंदीयतेइत्यनुवासनः "।

अर्थ–विरेचनके बाद ७ रात्रि बीत जानेपर जब शरीरमें बल आजाय तब भोजन कराके सायंकालमें अनुवासन बस्तिप्रयोग करे। अनुदिन (प्रतीदिन) इसका प्रयोग करना होताहै, इस्से इसको अनुवासन कहतेहैं ॥ ८१ ॥

सुवर्णरौप्यत्रपुताम्ररीति-
कांस्यायसास्थिद्रुमवेणुदन्तैः ॥
नलैर्विषाणैर्मणिभिस्ततस्तैः
कार्याणिनेत्राणिसुकर्णिकानि ॥ ८२ ॥
षड्द्वादशांगुलसम्मितानि
षड्विंशतिद्वादशवर्षजानाम् ॥
स्युर्मुद्गकर्कन्धुसतीलवाहि
छिद्राणिवस्तैःपिहितानिचापि ॥ ८३ ॥

यथावयोऽगुष्ठकनिष्ठिकाभ्यां
मूलाग्रयोःस्युःपरिनाववहान्ति ॥
ऋजूनिगोपुच्छसमाकृतीनि
श्लक्ष्णानिचस्युर्गुडिकामुखानि ॥ ८४ ॥
स्यात्कर्णिकैकाग्रचतुर्थभागे
मूलाश्रितेबस्तिनिबन्धनेद्वे ॥ ८५ ॥

अर्थ–सोंना,चांदी,सीसा, तांबा,पीतल, कांसी, लोहा, हड्डी, काठ, वांश, दांत नल, सींग अथवा मणिआदिसे श्रेष्ठ कर्णिका है आगे जिसको ऐसा नलबनावै।छैवर्षकी उमर वालेके लिये छैः अंगुलका, बीसवर्षकी उमरवालेके लिये १२अंगुलका और बारहवर्षकी उमर वालेके लिये आठ अंगुलका लम्बा नल बनावै। छैःअंगुलके नलमें मूंगकी समान, १२ अंगुलके नलमें बेरकी समान और आठअंगुलके नलमें मटरके दानेंकी समान छेद करके बत्तीसे तिसका मुंह ढकै। इसका परिमाण रोगीके आकारकी अनुसार उसके अंगूठेकी समान व्यासमूलभागमें स्थिर रखके कनऊंगलीकी समान नोक बनावै, उसनोकको सीधा गावदुम करे। मुख अत्यन्त चिकना गोलीकी समान गोलहो। इसके आगेके चौथाई अंशमें एक कर्णिका और मूलाश्रित बस्ति बांधनेके भागमें दो कर्णिकाओंको बनाना चाहिये ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

जारद्गवोमाहिषहारिणोवा
स्यात्शौकरोबस्तिरजस्यवापि ॥
दृढस्तनुर्नष्टशिरोविगन्धः
कषायरक्तश्चमृदुःसुशुद्धः ॥

नृणांवयोवीक्ष्ययथानुरूपं
नेत्रेषुयोज्यस्तुसुबद्धसूत्रः ॥ ८६ ॥

अर्थ—बूढाबैल, भैंसा, हरिण, शूकर, अथवा छागलके अंडकोषका दृढचर्म पतलो करे और शिरा (नस) आदिछोडकर गन्ध हीनकरे। फिर कषायद्रव्यसे रंगकर मृदु और शुद्धकरे। रोगीकी उमरके अनुसार वृषादिका बस्तिचर्म योग्यतासे ग्रहण करके नलीमें सूतसे बांधे ॥ ८६ ॥

अन्यच्च ।

बस्तिस्तुक्षीरतैलैर्योनिरूहःसनिगद्यते ।
बस्तिभिर्दीयतेयस्मात्तस्माद्बस्तिरितिस्मृतः॥८७॥

अर्थ—दूध और तेलसे जिस वस्तुका प्रयोग किया जाता है, तिसको निरूह कहते हैं, बस्तिसे प्रयोग किया जाताहै इस कारण उसको बस्ति कहा जाताहै ॥ ८७ ॥

तत्रानुवासनाख्योहिबस्तिर्यःसोऽत्रकथ्यते ।
पूर्वमेवततोबस्तिर्निरूहाख्योभविष्यति ॥ ८८ ॥
निरूहादुत्तरश्चैवबस्तिःस्यादुत्तराभिधः ।
अनुवासनभेदश्चमात्राबस्तिरुदीरितः ॥ ८९ ॥
पलद्वयंतस्यमात्रातस्माद्धोंऽपिवाभवेत् ।
अनुवास्यस्तुरूक्षःस्यात्तीक्ष्णाग्निःकेवलानिली ९०

अर्थ—अनुवासननामक बस्ति कही जातीहै । पहले पूर्व बस्तिके पीछे निरूह बस्ति और फिर उत्तरबस्तिका प्रयोग करे । अनुवासनका भेद मात्राबस्ति है, इसकी मात्रा २ पलहै । या इस्से आधी मात्रा प्रयोग करे । रूखा, तेज अग्निवाला और जिनके केवल वायु प्रबल है, वे अनुवासनके योग्य हैं ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥

नानुवास्यस्तुकुष्ठीस्यान्मेहीस्थूलस्तथोदरी।
नास्थाप्यानानुवास्याःस्युरजीर्णोन्मादतृड्युताः॥
शोथमूर्च्छारुचिभयश्वासकासक्षयातुराः॥ ९१॥

अर्थ–कोढ, प्रमेह, मेद और उदररोगवाले अनुवासनक्रियाके अयोग्य हैं। अजीर्ण, उन्माद, प्यास, शोथ, मूर्च्छा, अरुचि, भय, दमा, खांसी और क्षयरोगवालोंकोभी अनुवासन और आस्थापन मने है॥ ९१॥

नेत्रंकार्यंसुवर्णादिधातुभिर्वृक्षवेणुभिः।
नलैर्दन्तैर्विषाणाग्रैर्मणिभिर्वाविधीयते॥ ९२॥

अर्थ–सुवर्णादि धातु, वृक्ष, बांश, नल, दांत, सींगका अग्रभाग और मणि आदिका नल बनावै॥ ९२॥

एकवर्षात्तुषड्वर्षंयावन्मात्राषडंगुलम्।
ततोद्वादशकंयावन्मानंस्यादष्टसम्मितम्॥
ततःपरंद्वादशभिरंगुलैर्नेत्रदीर्घता॥ ९३॥
मुद्गच्छिद्रंकलायाभंछिद्रंकोलास्थिरन्ध्रकम्॥
यथासंख्यंभवेन्नेत्रंश्लक्ष्णंगोपुच्छसन्निभम्॥ ९४॥

अर्थ--बस्तिक्रियाके लिये एकसे लेकर छैःवर्षतक छैः अंगुलका, बारह वर्षतक ८ अंगुलका और तिस्से आगे १२ अंगुलका लम्बा नल बनावै। छय अंगुलके नलका छेद मूगकी समान, आठ अंगुलके नलका मटरकी समान और तिस्से ऊपर बेरकी गुठलीके समान करे। नल योग्यतानुसार मनोहर और गावदुमकरे॥ ९३॥ ९४॥

आतुरांगुष्ठमानेनमूलेस्थूलंविधीयते।
कनिष्ठिकापरीणाहमग्रेचगुडिकामुखम्॥ ९५॥

तन्मूलेकर्णिकेद्वेचकार्य्येभागाच्चतुर्थकात् ।
योजयेत्तत्रबस्तिंतुबन्धद्वयविधानतः ॥ ९६ ॥

अर्थ–बस्तिक्रियाका नल आतुरपुरुषके अंगूठेकी समान व्यास नलीके मूलमें स्थूल रखकर, कनडंगलीके समान व्यासवाला अग्रभाग (नोक) बनावै और मुख अत्यन्त चिकना, गोलीकी समान गोल करके नलीके चौथे भागमें ऐसी कर्णिका बनावै जिस्से बस्तीके जोर करके नलका अ-प्रमाण अंश भीतरेकी और न घुस आवै । और मूलकी ओर चौथे भागमें बस्तिबांधनेंके लिये दो कर्णिका बनावै॥९५।९६॥

मृगाजशूकरगवांमहिषस्यापिवाभवेत् ।
मूत्रकोषस्यबस्तिस्तुतदलाभेनचर्म्मजः ॥
कषायरक्तःसमृदुर्बस्तिःस्निग्धोदृढोहितः ॥ ९७ ॥

अर्थ–हरिण, छाग, शूकर, बैल, अथवा भैंसेका मूत्रकोष बस्तिक्रियामें श्रेष्ठ है, यह न हो, तो चमडेकी बनी बस्ति-से कार्य करे । बस्तिको कषायादिसे रंगले । इसका मुला-यम चिकना और मजबूत होना जरूरी है ॥ ९७ ॥

व्रणबस्तेस्तुनेत्रंस्याच्छ्लक्ष्णमष्टाङ्गुलोन्मितम् ।
मृदुच्छिद्रंगृध्रपक्षिनलिकापरिणाहिच ॥ ९८ ॥

अर्थ–व्रण (घाव–या फोडा) में बस्तिका प्रयोग करनाहो तो उसका नल मनोहर, आठ अंगुलके व्यासका गीधपक्षीकी नलीके समान और मृदुछेदवाला बनावै ॥ ९८ ॥

शरीरोपचयंवर्णंबलमारोग्यमायुषः ।
कुरुतेपरिवृद्धिंचबस्तिःसम्यगुपासितः॥ ९९ ॥

अर्थ–जब भलीभांतिसे बस्तीका प्रयोग होजाय तो

शरीरकी वृद्धि, बलवृद्धि; रंगकी प्रसन्नता, आरोग्य और परमायुकी वृद्धि होती है ॥ ९९ ॥

दिवाशीतेवसन्तेचस्नेहबस्तिःप्रदीयते ।
ग्रीष्मवर्षाशरत्कालेरात्रौस्यादनुवासनम् ॥१००॥

अर्थ—शीत और वसन्तकालमें दिनके समय स्नेह बस्ति और ग्रीष्म, वर्षा और शरत्कालके समय रात्रिमें अनुवासनका प्रयोग करे ॥ १०० ॥

नचातिस्निग्धशमनंभोजयित्वानुवासयेत् ।
मदमूर्च्छाश्चजनयेद्द्विधास्नेहप्रयोजितः॥१०१॥

अर्थ—अत्यन्त स्निग्धद्रव्य भोजनकराके अनुवासनका प्रयोग न करे । दोप्रकारके स्नेहसे बस्तिका प्रयोग करनेंपर मत्तता और मूर्च्छारोग उत्पन्न होता है ॥ १०१ ॥

हीनमात्रावुभौबस्तीनातिकार्य्यकरौस्मृतौ ।
अतिमात्रौतथानाहक्लमातीसारकारकौ॥१०२॥

अर्थ—दोनों प्रकारकी बस्तिकी हीन मात्रा अच्छी नहीं, तिस्से कार्य नहीं होता, अतिमात्राका प्रयोग करनेंसे उपकार नहीं होता और आनाह (अफारा) क्लान्ति व अतिसारका रोग उत्पन्न होता है ॥ १०२ ॥

उत्तमस्यपलैःषड्भिर्मध्यमस्यपलैस्त्रिभिः ।
पलद्वयेनहीनास्यादुक्तामात्रानुवासने ॥ १०३ ॥

अर्थ—अनुवासनकी श्रेष्ठमात्रा ६ पल, मध्यम मात्रा तीन पल और हीन मात्रा २ पल है ॥ १०३ ॥

अन्यच्च ।

निरूहमात्राप्रथमेप्रकुञ्चोवत्सरेपरम् ।

प्रकुञ्चवृद्धिः प्रत्यब्दं यावत्षट्प्रसृतास्ततः ॥
प्रसृतंवर्द्धयेदूर्ध्वं द्वादशाष्टादशस्य तु ।
आसप्ततेरिदंमानंदशैवप्रसृतापरम् ॥ १०४ ॥

अर्थ–प्रथम वर्षमें निरूहकी मात्रा एकपल, फिर प्रत्येक वर्षमें एक २ पल मात्रा बढाकर १२ वर्षमें १२ पलतक मात्रा बढावै । १२ वर्षके पीछे १८ वर्षतक प्रतिवर्षमें २ पल मात्रा बढावै । फिर सत्तरवर्षतक इतनी ही मात्राका प्रयोग करे । फिर क्रमानुसार २० पल मात्रा घटादे ॥ १०४ ॥

यथायथंनिरूहस्यपादोमात्रानुवासने ।
सानिलःसपुरीषश्चस्नेहःप्राप्नोतियस्यवै ॥ १०५ ॥
विनापीडांत्रियामस्थःससम्यगनुवासितः ।
विष्टब्धानिलविण्मूत्रःस्नेहोहीनेऽनुवासने ॥
दाहक्लमपिपासार्तिकरश्चात्यनुवासने ॥ १०६ ॥

अर्थ–यथायोग्यसे निरूहकी मात्राका चौथाई अंश अनुवासनमें प्रयोग करे । भलीभांतिसे अनुवासनक्रिया सिद्ध होजाय तो तीन पहरके बीचमें वायु और मलके साथ स्नेह निकल जाता है । जो अनुवासनक्रियामें भलीभांतिसे स्नेह न हो तो वायु, मूत्र और मलकी रोक होती है । ठीक अनुवासन नहीं, दाह, श्रम और प्यास उत्पन्न होती है ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

स्नेहात्पित्तकफोत्क्लेदोनिरूहात्पवनाद्भयम् ।
स्नेहबस्तिंनिरूहंवानैकमेवातिशीलयेत् ॥ १०७

अर्थ–स्नेह बस्ति या निरूहणक्रिया इनमेंसे सदा किसीका अभ्यास न करे । क्योंकि सदा स्नेहबस्तिका प्रयोग पित्त और

कफका उत्क्लेदकारी है । सदा निरूहणक्रियाका अभ्यास करना वायुको बढानेंवाला है ॥ १०७ ॥

अनास्थाप्यायेऽभिधेयानानुवास्याश्चतेमताः ।
विशेषतस्तमीपाण्डुकामलामेहपीनसाः ॥
निरन्नप्लीहाविड्भेदीगुरुकोष्ठकफोदराः ॥१०८॥
अभिष्यन्दभृशस्थूलकृमिकोष्ठाढ्यमारुतः ॥
पीतेविषेगरेऽपच्यांश्लीपदीगलगण्डवान् १०९॥

अर्थ-आस्थापनमें असमर्थ पुरुष अनुबासनक्रियाकेभी अयोग्य है। पाण्डु, कामला, मेह पीनस, निराहारी, तिल्ली, मल-भेद, गुरुकोष्ठ, कफोदर और अभिष्यन्द (आस्राव) रोगमें घिरा, अतिस्थूल, जिसके कोष्ठमें कीडेहों, ऊरुस्तम्भ: विषभोजी गरदोष, अपची, पांवसूजना और कंठमालाके रोगियोंपर अनुवासनका प्रयोग न करे ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

अनास्थाप्यास्त्वतिस्निग्धःक्षतोरस्कोभृशंकृशः ।
आमातिसारीवमिवान्संशुद्धौदत्तनावनः ॥११०॥
श्वासकासप्रसेकार्शोहिक्काध्मानाल्पवह्नयः ।
पायुशूलःकृताहारोबद्धच्छिद्रोदकोदरी ॥
कुष्ठीचमधुमेहीचमासान्सप्तचगर्भिणी ॥ १११ ॥

अर्थ-अतिस्निग्ध, क्षतोरस्क, अत्यन्त दुर्बल, आमातिसारी, वमिरोगवाला, संशुद्ध, नस्यप्रयोगित और दमा, खांसी, प्रसेक बवासीर, हिचकी, अफारा, मन्दाग्नि, गुह्यशूल, भोजनकारी बद्धोदर, छिद्रोदर, जलोदर, कोढ़, मधुमेहरोगवाला और सात मासकी गर्भिणीपर आस्थापनप्रयोग न करे ॥ ११० ॥ १११ ॥

नचैकान्तेननिर्दिष्टेप्यत्राभिनिविशेद्बुधः ।
भवेत्कदाचित्कार्य्यापिविरुद्धाऽभिमताक्रिया ११२
छर्दिहृद्रोगगुल्मार्त्तौवमनंस्वेचिकित्सिते ।
अवस्थांप्राप्यनिर्दिष्टंबस्तिकर्म्मचयोजयेत् ॥ ११३

इत्यनुवासनम् ।

अर्थ–पहले कही हुई रीतिसे अयोग्य क्रिया निषिद्ध होनेंपर भी कभी २ किसी खासरोग और खास अवस्थामें निषिद्ध क्रियाकाभी प्रयोजन होताहै । जैसे वमि, हृद्रोग और गुल्म-रोगमें वमन और कुष्ठरोगमें बस्तिकर्म साधारण करके निषेधित होनें परभी अपने २ चिकित्साके स्थानमें तिनकी प्रयोगविधि उचित रूपसे है ॥ ११२ ॥ ११३ ॥

अथनिरूहमाह ।

अनुवास्यास्निग्धतरंतृतीयेऽह्निनिरूहयेत् ।
मध्याह्नेकिंचिदावृत्तेप्रयुक्तेबलिमंगले ॥ ११४ ॥
अभ्यक्तस्वेदितोत्सृष्टमलंनातिबुभुक्षितम् ।
तृतीयेऽह्निप्रायोवादात्पंचमेप्यह्निक्रियते ॥११५॥
"निरूहयेदितिदोषंनिर्हरेदित्यर्थः"

अर्थ–अनुवासनके पीछे अधिक स्निग्ध शरीरमें तीसरे दिन निरूहणकी क्रिया करे । मध्याह्नसमयके कुछ काल पीछे मांगलिक बलि देकर, जो बहुत भूखा न हो ऐसा मनुष्य मल त्याग करके शरीरमें स्नेह मर्दन और स्वेदप्रदान करे । अनु-वासनके पीछे निरूहणक्रिया तीसरे अथवा पांचवे दिनभी कीजा सकती है ॥ ११४ ॥ ११५ ॥

यदाहवाग्भटः ।

पंचमेऽथतृतीयेवादिवसेसाधकेशुभे ॥ ११६ ॥

अर्थ–वाग्भटने कहाहै कि अनुवासनके पीछे पांचवे अथवा तीसरे दिन शुभ क्षणमें निरूहण करावे ॥ ११६ ॥

अतएवाहसुश्रुतः ।

सदोषहरणाच्छरीररोगहरणाद्वानिरूहइति ।
अस्यास्थापनमित्यपिनाम । वयःस्थापनादायु-
स्थापनाद्वाआस्थापनमितिसुश्रुतएव ॥११७॥

अर्थ–सुश्रुत कहता है कि शरीरके दोष और रोगक नाशक होनेंसे इसको निरूह कहते हैं, इसका दूसरा नाम आ-स्थापन है; वयस्थापन और आयुस्थापन करनेंसे इसका नाम आस्थापन है ॥ ११७ ॥

पक्षाद्विरेकोवान्तस्यततश्चापिनिरूहणम् ।
सद्योनिरूढोऽनुवास्यःसप्तरात्राद्विरेचितः ११८

अर्थ–विरेचन और वमन कियेको पंद्रह दिनके पीछे निरूण करावै जिसने निरूह और अनुवासन कियाहो, उसपर सात रात्रिके पीछे विरेचनका प्रयोग करे ॥ ११८ ॥

मधुस्नेहेनकल्काख्यःकषायावापतःक्रमात् ।
त्रीणिषड्द्वेदशत्रीणिपलान्यनिलरोगिषु ॥ ११९ ॥
पित्तेचत्वारिचत्वारिद्वेद्वेपंचचतुष्टयम् ।
षट्त्रीणिद्वेदशत्रीणिकफेचापिनिरूहणम् ॥१२०॥

अर्थ–जिन रोगोंमें वायु प्रबलहो उनमें मधु ३ पल, स्नेह ६

---

१ स्नेहनं पक्वस्नेहः आमस्य निषिद्धत्वात् " नचामं प्रणयेत् स्नेहं सह्यते स्नेहयेत् गुदमिति दृढबलत्वात्" । पक्वस्नेहश्च वातव्याधौ वक्ष्य-माणो नारायणप्रसारणीसैन्धवादितैलादिकः । एवमनुवासनेऽपि ॥ कल्को मदनफलादीनाम् । कषायो दशमूलादीनाम् । आवापः काञ्जिक-जम्बीररसमांसरसादीनाम् । त्रीणि इत्यादि वातरोगे क्रमाद्यथाक्रमं

पल, कल्क २ पल, काढ़ा १० पल और कांजी आदिकी मात्रा २ पल प्रयोग करे। पित्तकी प्रबलतामें मधु ४ पल, स्नेह ४ पल, कल्क २ पल, क्वाथ १० पल, दूध व कांजी आदि ४ पल। कफके कोपमें मधु ६ पल, स्नेह ३ पल, कल्क दोपल, काढ़ा १० पल और दूध व कांजीआदि तीनसे निरूहण करे ॥ ११९ ॥ १२० ॥

शार्ङ्गधरमतमाह।

निरूहबस्तिर्बहुधाभिद्यतेकारणान्तरैः।
तैरेवतस्यनामानिकृतानिमुनिपुंगवैः॥ १२१॥

अर्थ–निरूहबस्ति दूसरे कारणोंके भेदसे अनेक प्रकारमें विभक्त है। इस कारण मुनिलोगोंकरके उसका कारण अनुयायीनाम नियत हुआ है ॥ १२१ ॥

निरूहस्यापरंनामप्रोक्तमास्थापनंबुधैः।
स्वस्थानस्थापनाद्दोषधातूनांस्थापनंमतम् १२२॥

अर्थ–निरूहका दूसरा नाम आस्थापन है। दोष और धातुको शुद्ध करती है और यथास्थानमें स्थापन करती है, इस कारण पंडितोंनें इसका नाम आस्थापन रक्खा है ॥ १२२ ॥

निरूहस्यप्रमाणञ्चप्रस्थंपादोत्तरंपरम्।
मध्यमंप्रस्थमुद्दिष्टंहीनञ्चकुडवास्त्रयः॥ १२३ ॥

अर्थ–निरूहकी प्रधानमात्रा ऽ२॥ ढाई सेर है। मध्यममात्रा दो सेर और हीनमात्रा डेढ़सेर है ॥ १२३ ॥

मधुनस्त्रीणि पलानि, स्नेहस्य षट्, कल्कस्य द्वे, कषायस्य दश, त्रिणि च आवापस्य। एवं पित्ते मधुनश्चत्वारि, स्नेहस्य च चत्वारि, कल्कस्य द्वे, कषायस्य द्विपंचेति दशेत्यर्थः। आवाप्यस्य च चतुष्टयमिति एवं कफे मधुनः षट्पलानीति योज्यम् ॥

अतिस्निग्धोत्क्लिष्टदोषःक्षतोरस्कःकृशस्तथा ।
आध्मानच्छर्दिहिक्कार्शःकासश्वासप्रपीडितः १२४॥
गुदशोथातिसारार्त्तोविषूचीकुष्ठसंयुतः ।
गर्भिणीमधुमेहीचनास्थाप्यश्चजलोदरी ॥ १२५ ॥

अर्थ-अतिस्निग्ध, उत्क्लिष्टदोषवाला, जिसके उरमें क्षत हो, दुर्बल, पेटका अफारा, वमि, हिचकी, बवासीर, खांसी, दमा, गुदामें दर्द, शोथ, अतिसार, विषूचिका, कोढ, मधुमेह और जलोदरादि रोगवालोंको और गर्भिणीको आस्थापन प्रयोग न करावै ॥ १२४ ॥ १२५ ॥

वातव्याधावुदावर्त्तेवातासृग्विषमज्वरे ।
मूर्च्छातृष्णोदरानाहमूत्रकृच्छ्राश्मरीषुच ॥१२६॥
वृद्ध्यासृग्दरमन्दाग्निप्रमेहेषुनिरूहणम् ।
शूलेऽम्लपित्तेहृद्रोगेयोजयेद्विधिवद्बुधः ॥ १२७ ॥

अर्थ-वातव्याधि, उदावर्त्त, वातरक्त, विषमज्वर, मूर्च्छा, तृष्णा, उदर, अफारा, सुजाक, पथरी, वृद्धि, प्रदर, मन्दाग्नि, प्रमेह, शूल, अम्लपित्त और हृद्रोगआदिरोगसे घिरेहुओंपर यथा योग्यसे चतुर वैद्य निरूहण वा प्रयोग करे॥१२६॥१२७॥

उत्सृष्टानिलविण्मूत्रंस्निग्धंस्विन्नमभोजितम् ।
मध्याह्नेगृहमध्येतुयथायोग्यंनिरूहयेत् ॥ १२८ ॥

अर्थ-वायु (अधोवायु) मलमूत्रादित्याग कराकर स्निग्ध, शरीरमें पसेवदे । और भूख लगनेके समय आहार न कराकर मध्याह्नकालके समय गृहमें रखकर योग्यतानुसार निरूहणकी क्रियाको करे ॥ १२८ ॥

स्नेहबस्तिविधानेनबुधःकुर्य्यान्निरूहणम्।
जातेनिरूहेचततोभवेदुत्कटुकासनः॥ १२९॥
तिष्ठेन्मुहूर्त्तमात्रन्तुनिरूहागमनेच्छया।
अनायातंमुहूर्त्तान्तेनिरूहंशोधनैर्हरेत्॥ १३०॥

अर्थ—स्नेहबस्तीकी विधिके अनुसार निरूहणक्रिया करे। निरूहणक्रिया की जानेपर उसके लौट आनेंकी प्रतीक्षा-करके मुहूर्त्ततक उत्कटासनपर (उत्कटपांवसे) बैठे। यदि एक मुहूर्त्तमेंभी निरूह न आवे, तौ निरूहके लौट आनेकी क्रियाकरे॥ १२९॥ १३०॥

सम्यक्निरूहस्यलक्षणमाह।

नधावत्यौषधंपार्णिनातिष्ठत्यवलिप्यच।
नकरोतिचसीमन्तंसनिरूहःसुयोजितः॥ १३१॥
"नधावतिनपृथग्भवति। सीमन्तंतैलादिरेखाम्।
एतेनमधुस्नेहादीनामपृथग्भावइत्युक्तंभवति" १३२

अतएवोक्तम्।

कल्कस्नेहकषायाणामविवेकाद्भिषग्वरैः।
बस्तिस्तुकल्कितःप्रोक्तस्तस्यादानंतथार्थकृत् १३३

अर्थ—अच्छेनिरूहके लक्षण। चिकित्सामृतमें कहा है कि भलीभांतिसे निरूहणक्रियाके करनेकी औषधी हाथमें लगनेसे अलग होकर गिरे नहीं और हाथमें लेप करनेंपर गाढ़ी होकर हाथहीमें रहै या तैलादिकी रेखाभि दिखाई नहीं दे, ऐसे लक्षण हों तो औषधिका भला प्रयोग हुआ जाने। इसकारण कल्क, स्नेह और कषायादिकी परस्पर अभिन्नता दिखादेई

तो चतुर वैद्य इसप्रकार यथायोग्यभावसे निरूहबस्तिका प्रयोग करे।इस्से योग्यफल पायाजाता है ॥ १३१ ॥ १३२ ॥ १३३ ॥

पूर्वोक्तेनविधानेनंगुदेबास्तिंनिधापयेत् ।
त्रिंशन्मात्रास्थितोबास्तिस्तत्रउत्कटुकोभवेत् १३४
यावत्पर्य्यैतिहस्ताग्रंदक्षिणंजानुमंडलम् ।
निमेषोन्मेषकालोवासामात्रापरिकीर्त्तिता॥१३५॥
"उत्कटुकोभवेदितिबस्तेरागमनायउत्कटुकइति ।
उद्गतइतिलोके। एतच्चमृदुकोष्ठंप्रातिवेगिनश्च।
अवेगिनंप्रतिक्रूरकोष्ठंप्रतियथा" ॥ १३६ ॥

अर्थ-पहले कहे हुए अनुवासनकी विधिके अनुसार निरूहणभी गुदामें प्रयोग करे। मृदुकोष्ठमें ३० मात्रा काल बंस्ति धारणकराकर फिर उत्कटाभावसे बिठलावै । दाहिनी जांघके ऊपर हाथ रखके पर्यायके क्रमसे केवल एकवार हाथ घुमानेमें जितना समय लगता है, तितना समय, अथवा निमेषवा उन्मेष कालतक बस्ति धारण करनेका योग्य समय है ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ १३६ ॥

जानुमण्डलमावेष्टोदत्तंदक्षिणपाणिना।
कृष्णनेत्रच्छटाशब्दशतंतिष्ठेदवेगवान् ॥
" कृष्णनेत्रोबाहिष्कृतनलिकः ।
छटातुरीतिख्याता " ॥ १३७ ॥

अर्थ-कठिन कोठा होतो दाहिने हाथसे जानुमंडलको वेष्टन करके नलको प्रवेश कराकर शततुरी(एकशत अंगलकी एक तुरी होतीहै) काल अपेक्षा करे ॥ १३७ ॥

द्वितीयंवातृतीयंवाचतुर्थंवायथार्हतः ।
पुटंप्रदापयेद्वैद्योबुद्ध्वारोगबलाबलम् ॥
सम्यङ्निरूढलिंगेतुप्राप्तेबस्तिंनिवारयेत् ॥ १३८ ॥

"यथार्हइति यो यावन्तं पुटमर्हति तस्य तावन्तं पुटं दापयेदित्यर्थः"

अर्थ-रोगीका बलाबल विचारके दो तीन अथवा चार वारतक, जो जितनी बस्तिके योग्य है तिसपर तितनीही वार प्रयोगकरे, जब भलीभांतिसे निरूहके लक्षण प्राप्त होजांय तब बस्तिका प्रयोग बन्द करे ॥ १३८ ॥

अन्यच्च ।

नाभिप्रदेशञ्चकटिञ्चगत्वा
कुक्षिंसमालोड्यपुनश्चसृष्टम् ॥
संस्निह्यकायंसपुरीषदोषः
सम्यक्सुखेनेतिचयःसबस्तिः ॥१३९॥
प्रसृष्टविण्मूत्रसमीरणत्वं
रुच्यग्निवृद्ध्याशयलाघवानि ॥
वेगोपशान्तिःप्रकृतिस्थताच
बलञ्चतत्स्यात्सुनिरूढलिङ्गम् ॥ १४० ॥

अर्थ-स्निग्ध शरीरमें भलीभांतिसे बस्तीका प्रयोगहो, कमर, नाभि और कोखको उथलपुथलकर मलके साथ दोषको बाहर निकालदेताहै; भलीभांतिसे निरूहण होंने पर वायु, मूत्र और मलकी सरलता, आहारमें रुचि, अग्निकी वृद्धि,आशयकी लघुता, रोगका दूरहोंना और देहस्थ होकर बल उत्पन्न होताहै ॥ १३९ ॥ १४० ॥

असम्यङ्निरूहलक्षणमाह ।

स्याद्धृच्छिरोरुग्गुदकुक्षिलिङ्गे
शोथःप्रतिश्यापरिकार्त्तिकाच ।
हृल्लासिकामारुतमूत्रसंगः
श्वासोनसम्यक्चनिरूहितेस्यात् ॥ १४१ ॥
अयोगश्चातियोगश्चनिरूहस्यविरेकवत् १४२॥
इतिनिरूहबस्तिविधिः ।

अर्थ–भलीभांति निरूह नहो, तो हृदय और शिरमें दर्द, गुदा, कोख, लिंगमें पीडा, और शोथ, जुकाम हिचकी, वायु और मूत्रकी रुकावट, और श्वासरोग होताहै । विरेचनकी समान निरूहकाभी अयोग वा अतियोग होताहै ॥ १४१ ॥ १४२ ॥

अथोत्तरबस्तिमाह ।

अतःपरंप्रवक्ष्यामिबस्तिमुत्तरसंज्ञितम् ।
द्वादशांगुलकंनेत्रंमध्येचकृतकर्णिकम् ॥
मालतीपुष्पवृन्ताभंछिद्रंसर्षपानिर्गमम् ॥१४३॥

अर्थ–उत्तरबस्तिकी विधि कही जातीहै–उत्तरबस्तिका नल १२ अंगुल लम्बाहो । उसके बीचमें कर्णिका बनानी चाहिये । मालतीफूलके वृन्त (फल, पुष्प, पत्रादिका मूल) की समान स्थूलहो, तिसमें छेद ऐसा करे जिसमेंसे होकर सरसों निकल सके ॥ १४३ ॥

पंचविंशतिवर्षाणांमध्येमात्राद्विकार्षिकी ।
तदूर्ध्वंपलमात्राचस्नेहस्योक्ताभिषग्वरैः ॥ १४४ ॥

अर्थ–पचीस वर्षसे कम उमरवालेके लिये स्नेहकी मात्रा २ कर्ष (४तो०)है । तिस्से ऊपर एक पल मात्राका प्रयोगकरे १४४

अथास्थापनशुद्धस्यतृप्तस्यस्नानभोजनैः ।
स्थितस्यजानुमात्रेणपीठेऽन्विष्यशलाकया ॥१४५
स्निग्धयामेढ्रमार्गेणततोनेत्रंनियोजयेत् ।
शनैःशनैर्घृताभ्यक्तंमेढ्ररन्ध्रांगुलानिषट् ॥ १४५ ॥
ततोऽवपीडयेद्बस्तिंशनैर्नेत्रञ्चनिर्हरेत् ।
ततःप्रत्यागतेस्नेहेस्नेहबस्तिक्रमोहितः ॥ १४७ ॥

अर्थ–पहले आस्थापनद्वारा रोगीका शरीर शुद्ध करके स्नान करावै । फिर भलीभांति भोजन कराय पीढीके ऊपर जांघोंके बल बैठावै, फिर स्नेह लगी शलाका (सलाई) से सावधानताके साथ लिंगके छेदको अनुवेषण करके घी लगाहुआ नल धीरे २लिंगमें घुसादे। छःअंगुलतक नल घुसाकर बस्तिको पीडितकर फिर धीरे २ उस नलको लिंगमेंसे बाहर निकालले । जब स्नेह आने लगे तो क्रमानुसार स्नेहबस्तिका प्रयोग करता रहै ॥ १४५॥ १४६ ॥ १४७ ॥

स्त्रीणांकनिष्ठिकास्थूलंनेत्रंकुर्य्याद्दशांगुलम् ।
मुद्गप्रवेश्यंयोज्यञ्चयोन्यन्तश्चतुरङ्गुलम् ॥१४८॥
द्व्यंगुलंमूत्रमार्गेचसूक्ष्मंनेत्रंनियोजयेत् ॥
मूत्रकृच्छ्रविकारेषुबालानामेकमंगुलम् ॥ १४९ ॥

अर्थ–स्त्रियोंके लिये उत्तरबस्तिका नल दशअंगुल लम्बा हो उसके अगले हिस्सेमें इतना छेदहो कि जिसमेंको एक मूंगका दाना निकलसके । अपत्यमार्गमें (योनिमें) बस्तिका प्रयोग करना होतो उसके ४ अंगुलकी बराबर, जो सुजाकादिरोगमें, मूत्ररन्ध्रमें बस्तिका प्रयोग करनाहो तो २अंगुल नल प्रवेश करावै ।परन्तु बालिकाके मूत्ररन्ध्रमें एक अंगुल नल प्रवेश करना ठीक है ॥ १४८ ॥ १४९ ॥

यदाहवाग्भटः ।

स्त्रीणामार्त्तवकालेतुयोनिर्गृह्णात्यपावृतः ।
विदधीततदातस्मादनृतावपिचात्यये ॥
योनिविभ्रंशशूलेषुयोनिव्यापदसृग्दरे ॥ १५० ॥

अर्थ–ऋतुवाली स्त्रियोंका योनिद्वार खुलाहुआ रहताहै। अतएव इससमय बस्तिका प्रयोग करनेंसे स्नेह योनिमें सहजसे प्रवेशकर सकता है। इसकारण योनिकन्द (योनिभ्रंश) योनिपीडा, योनिव्यापत् और प्रदररोगमें रजस्वलावस्थामें स्त्रियोंकी योनिके मार्गमें उत्तरबस्तिका प्रयोग करना चाहिये। परन्तु किसीप्रकारका मारात्मकरोग होवै, तो ऋतुके सिवाय और कालमें भी उतरबस्तिका प्रयोग कियाजा सकता है१५०

शनैर्निष्कम्पमाधेयंसूक्ष्मंनेत्रंविचक्षणैः ।
योनिमार्गेषुनारीणांस्नेहमात्राद्विपालिकी॥ १५१ ॥

अर्थ–चतुर चिकित्सकको चाहिये कि धीरे २ स्त्रियोंकी योनिमें सूक्ष्म नल प्रवेश करादे । गर्भाशय शुद्ध करनेके लिये स्नेहकी मात्रा दोपलतक प्रयोगकरे ॥ १५१ ॥

उत्तानायैस्त्रियैदद्यादूर्ध्वजान्वैविचक्षणः ।
अप्रत्यागच्छातिभिषग्बस्तावुत्तरसंज्ञिते ॥१५२ ॥
भूयोबस्तिर्विधातव्यःसंयुक्तैःशोधनैर्गणैः ।
फलवर्त्तिनिदध्याद्वायोनिमार्गेदृढांभिषक् ॥
मूत्रैर्विनिःसृतांस्निग्धांशोधनद्रव्यसंयुताम् ॥१५३॥

अर्थ–स्त्रियोंपर उत्तरबस्तिका प्रयोग करनाहो तो उनको चित्तलिटाकर दोनोंऊरूको झुकवादे और दोनोंजांघोंको ऊंचा करके चतुर चिकित्सक बस्तिका प्रयोग करे। जो उत्तरबस्ति समयानुसार नलौटै तो फिर संशोधक द्रव्ययुक्त बस्तिका प्रयोग करे, अथवा योनिमार्गमें, मूत्रनिकालनेंवाला और स्निग्ध

संशोधकद्रव्ययुक्त मजबूत बत्ती चढावै ॥ १५२ ॥ १५३ ॥

दह्यमानेतथाबस्तौदद्याद्वर्त्तींविशारदः।
क्षीरवृक्षकषायेणपयसाशीतलेनच ॥ १५४ ॥

अर्थ-बस्तिक्रियासे कोईस्थान दग्ध होजाय तो क्षीरवृक्षके कषाय और शीतल जलसे फिर बस्तिका प्रयोग करे ॥१५४॥

बस्तिःशुक्ररुजःपुंसांस्त्रीणामार्त्तवजांरुजः।
हन्यादुत्तरबस्तिस्तुनोचितोमेहिनांक्वचित् ॥ १५५

अर्थ-बस्तिके प्रयोगसे पुरुषका शुक्रदोष और स्त्रियोंका रजोदोष नाश होजाता है। परन्तु प्रमेहरोगवालेपर कभी उत्तरबस्तिका प्रयोग नकरै ॥ १५५ ॥

सम्यग्दत्तस्यलिङ्गानिव्यापदःक्रमएवच।
बस्तेरुत्तरसंज्ञस्यसमानंस्नेहबस्तिना ॥ १५६ ॥

अर्थ-उतरबस्तिकी भलीभांतिसे सिद्धि और उसको व्यापत्तिके लक्षण और चिकित्साविधि सब स्नेहबस्तिकी समान हैं॥ १५६

घृताभ्यक्तेगुदेक्षेप्याश्लक्ष्णास्वांगुष्ठसन्निभा।
मलप्रवर्त्तिनीवर्त्तिःफलवर्त्तिश्चसास्मृता ॥ १५७ ॥

अर्थ-गुदामें घी मलकर, रोगीअंगूठेकी बराबर और साफ जो मलकी लानेंवाली बत्तीका प्रयोग किया जाता है तिसको फलवर्त्ति कहते हैं ॥ १५७ ॥

आनन्दसेनस्त्वाह।

बस्तिमात्रायथा।

अनुवासनभेदश्चमात्राबस्तिरुदीरितः।
पलार्द्धमुत्तरोबस्तेमात्राबस्तेःपलद्वयम् ॥ १५८ ॥
यापनास्नेहबस्तिश्चद्वावेतौषट्पलान्विता।
पिच्छाबस्तिर्भवेत्प्रस्थःसपादःकीर्त्तितोऽपरैः ॥५९
यापनाबस्तिरितिवातविकारयापनार्थयोबस्तिरित्यर्थः

अर्थ-उतरबस्तिकी पूर्णमात्रा अर्द्धपल (४ तो०) है। मात्राबस्तिकी दोपल है। और यापनाबस्ति (वातविकारमें जिस बस्तिका प्रयोग किया जाताहै) और स्नेहबस्ति इनदोनों की मात्रा छयपल है। पिच्छाबस्तिकी मात्रा एकप्रस्थ, कोईकोई सवासेर कहते हैं ॥ १५८ ॥ १५९ ॥

नचैकान्तेचनिर्दिष्टेप्यत्राभिनिविशेद्बुधः ॥ १६० ॥
भवेत्कदाचित्कार्य्यापिविरुद्धाभिमताक्रिया १६१॥
"अभिनिविशेन्निश्चयंकुर्य्यादित्यर्थः। अभिमता,
क्रियायद्यपिविरुद्धाभवेत्तथापिकार्य्येतिशेषः।

अर्थ-चिकित्सक लोगोंको केवल शास्त्रमें नियत हुई क्रियाके भरोसे रहकर तिसके अनुसार इलाज नहीं करना चाहिये। क्योंकि कहीं २ विरुद्ध क्रियाका प्रयोजनभी होता है ॥ १६० ॥ १६१ ॥

अन्यच्च।

दीयतेक्षीरतैलैर्योनिरूहःसनिगद्यते।
बस्तिभिर्दीयतेयस्मात्तस्माद्बस्तिरितिस्मृतः १६२

अर्थ-दूध और तैलादि स्नेह वस्तुओंसे जो वस्तुका प्रयोग किया जाता है तिसको निरूह कहते हैं। बस्ति (मृगादिके द्वारा) प्रयोग होती है इस्से उसे बस्ति कहते हैं ॥ १६२ ॥

अत्रानुवासनाख्योहिबस्तिर्यःसोऽत्रकथ्यते।
पूर्वमेवततोबस्तिर्निरूहाख्योभविष्यति ॥
निरूहादुत्तरश्चैवबस्तिःस्यादुत्तराभिधः ॥ १६३ ॥

अर्थ-अनुवासननामक बस्ति कही जाती है। पहले अनुवासनबस्ति, फिर निरूहबस्ति और तदुपरान्त उत्तरबस्ति है॥ १६३॥

अनुवास्यस्तुरूक्षःस्यात्तीक्ष्णाग्निःकेवलानिली।

वानुवास्यस्तुकुष्ठीस्यान्मेहीस्थूलस्तथोदरी॥ १६४
नास्थाप्यानानुवास्याःस्युरजीर्णोन्मादतृड्युताः ।
शोथमूर्च्छारुचिभयश्वासकासक्षतातुराः ॥ १६५॥

अर्थ–रूखी देहवाला तीक्ष्णदेहवाला वायुरोगसे घिरे मनुष्यगण अनुवासनके योग्य हैं। कोढ, प्रमेह, स्थूल उदर, अजीर्ण, उन्माद, प्यास, शोथ, मूर्च्छा अरुचि, भय, दमा, खांसी और क्षतवाले रोगी आस्थापन और अनुवासनके अयोग्य हैं ॥१६५

धूमःपित्तानिलौकुर्यादवश्यायःकफानिलौ ॥१६६॥

अर्थ–धुआं–पित्त और वायुका बढानेंवाला है। कुहरा–कफ और वायुवर्द्धक है ॥ १६६ ॥

धूमपानगुणमाह ।

गौरवंशिरसःशूलंपीनसोर्द्धावभेदकः ।
कर्णाक्षिशूलंकासश्चहिक्काश्वासोगलग्रहः १६७॥
दन्तदौर्बल्यमास्रावःश्रोत्रघ्राणाक्षिदोषजः ।
पूतिघ्राणास्यगन्धश्चदन्तशूलमरोचकम्॥१६८
हनुमन्याग्रहःकण्डूःक्रिमयोमुखपाण्डुता ।
श्लेष्मप्रसेकोवैस्वर्य्यंगलगण्डाधिजिह्वके १६९॥
खालित्वंपिंजरत्वञ्चकेशानांपतनंतथा ।
क्षवथुश्चातितन्द्राचबुद्धेर्मोहोतिनिद्रता॥१७०॥
धूमपानात्प्रशाम्यन्तिबलम्भवतिचाधिकम् ७१

अर्थ–धूमपान (हुक्का) करनेंसे देहका भारीपन, शिरदर्द, पीनस, अर्द्धावभेदक, आंख कानका दर्द, खांसी, हिचकी, दमा, गलग्रह, दांतोंकी कमजोरी, मुखसे पानीका गिरना, कान, नाक और नेत्रोंको दोष, नासिका और मुखकी

दुर्गन्ध, दांतोंका दर्द, अरुचि, हनुग्रह[1] मन्याग्रह (गरदनादिक रहजाना) दाद, कीडे, मुखका श्वेत होजाना, श्लेष्माका कोप, स्वरभंग, कंठमाला, आधिजिह्वक (जीभका घाव । खालित्य(बालोंका फिर न आना),केशोंका रंग बदलना, केशोंका गिरना, क्षवथू (एकप्रकारकी खांसी) तन्द्रा, बुद्धीकी जड़ता और अतिनिद्राका नाशहो जाताहै, बल बढताहै १७१॥

रक्तपित्तान्धबाधिर्य्यतृणमूर्च्छामदमोहकृत् ।
धूमोऽकालेऽतिपीतोवातत्रशीतोविधिर्म्मतः॥१७२

अर्थ–अकालमें या अधिक धूमपान करनेसे रक्तपित्त, अन्धापन, बहरापन, प्यास, मत्तता और मोह उत्पन्न होताहै। ऐसी अवस्थामें शीतल क्रिया करे ॥ १७२ ॥

प्रायौगिकःस्नैहिकश्चवैरेचनिकएवच ।
कासहारीवामनीयोधूमःपंचविधोमतः॥ १७३ ॥

"प्रायौगिकःप्रयोगःसुस्थस्य।स्नेहकारीस्नैहिकः। दोषविरेचनाद्वैरेचनिकः। कण्टकार्य्यादिभिर्धूमपानात्कासहरः। वमनकारीवामनीयः" ॥

अर्थ–प्रायौगिक, स्नैहिक, वैरेचनिक, कासहर और वामन, यह पांच धूमपान हैं ॥ १७३ ॥

वक्त्रेणैववमेद्धूमंनस्तोवक्त्रेणवापिबन् ॥ १७४ ॥
उरःकण्ठगतेदोषेवक्त्रेणधूममापिबेत् ॥
नासयातुपिबेद्दोषेशिरोघ्राणाक्षिसंश्रये ॥ १७५॥

अर्थ–नासिका और मुखमें धूमपान करके मुखसे छोडदे। छाती और कण्ठगत रोगमें मुखसे धूमपान। मस्तक, नासिका और नेत्रोंके रोगमें नासिकासे धूमपानकरे ॥ १७५ ॥

---

१ अश्वस्य वातव्याधौ अत्र हनू संगृहीतौ निश्चलौ लालास्त्रावश्च । जयदत्तः ५५ अ० ।

निषेधमाह ।

योज्यंनापित्तरक्तार्त्तीविरिक्तोदरमेहिषु ।
तिमिरोर्ध्वानिलाध्मानरोहणीदत्तबस्तिषु १७६
मत्स्यमद्यदधिक्षौद्रक्षीरस्नेहविषाशिषु ।
शिरस्यविहतेपाण्डुरोगेजागरितेनिशि ॥१७७॥
"रोहिणीकण्ठरोहिणी । आशिष्वितिमत्स्या-
दिभिःसम्बध्यते । पानेभोजने ॥ " ॥

अर्थ–रक्तपित्त विरिक्त (विरेचित) उदर, प्रमेह, रतौंधा, या धुंध, ऊर्द्धवात, रोहिणीबस्ति दिया हुआ और मत्स्य, मद, दही, शहत, दूध स्नेह और विषभोजी, शिररोग, पाण्डुरोग और रातमें जागनेवालोंके लिये धूमपान निषिद्ध है ॥१७६॥१७७॥

इतिधूमपानम् ।

अथ कवलगण्डूषधारणमाह ।

(यदाहशार्ङ्गधरः)

चतुर्विधःस्याद्गण्डूषःस्नैहिकःशमनस्तथा।
शोधनोरोपणश्चैवकवलश्चापिताद्विधः ॥१७८ ॥
स्निग्धोष्णैःस्नैहिकोवातेस्वादुशीतैःप्रसादनः ।
पित्तेकट्वम्ललवणैरुष्णैःसंशोधनःकफे ॥ १७९ ॥
कषायतिक्तमधुरैःकटूष्णेरोपणेव्रणे ।
चतुष्प्रकारैर्गण्डूषःकवलश्चापिकीर्त्तितः ॥ १८०॥

अर्थ–गण्डूष (कुल्ला) का धारणकरना चार प्रकारका है । यथा–स्नेहन, शमन, शोधन, और रोपण। ऐसे(ग्रास) चार प्रकारके हैं । वातकी अधिकाईमें चिकने और उष्णद्रव्यसे स्नेहन गण्डूष; पित्तकी अधिकाईमें मधुर और शीतल द्रव्यसे शमन गण्डूष,

---

१व्रीहिप्रमाणाग्रन्थ्यपच्यर्बुदश्लीपदगलगण्डाधिष्ठाना।सुश्रुत ४ अ० ।

कफकी अधिकाईमें कटु, अम्ल और लवणरसयुक्त उष्णद्रव्योंसे शोधन गण्डूष, व्रणरोगादिमें कषाय, कटु, मधुर और तीखे द्रव्योंसे रोपण गण्डूष धारण करना चाहिये। कवलप्रयोग करनें-के भी यही नियम है, गंडूष और कवलके यही चार प्रकारके नियम कहे॥ १७८ ॥ १७९ ॥ १८० ॥

असञ्चारिमुखेपूर्णेगण्डूषःकवलश्चरः।
तत्तुद्रवेणगण्डूषःकल्केनकवलंःस्मृतः ॥१८१॥
दद्याद्द्रवेषुचूर्णञ्चगण्डूषेकालमात्रया।
कर्षप्रमाणःकल्कश्चकवलेदीयतेबुधैः ॥ १८२ ॥

अर्थ–गण्डूषके लिये द्रव (तरल) पदार्थ ऐसे परि-माणसे मुखमें धारण करने चाहिये कि वह मुखमें चलाय-मान नहों। और कवलके लिये द्रवपदार्थ इसमात्रासे मुखमें धारण करने चाहिये कि, वह सहजसे चलायमान कियेजाय। गण्डूष और कवल धारणकरनेके समय द्रव द्रव्य साथ कल्क मिलालेना चाहिये। गण्डूषके लिये द्रव पदार्थमें एक तोला चूर्ण पदार्थ और कवलके लिये २ तो० चूर्ण पदार्थ मिलावै ॥ १८१ ॥ १८२ ॥

धार्यन्तेपंचमाद्वर्षाद्गण्डूषकवलादयः।
गण्डूषान्सुस्थितान्कुर्यान्स्विन्नतालुगलाननः१८३॥
षडष्टत्रींस्तथापंचसप्तवादोषनाशनान्।
कफपूर्णास्यतायावच्छेदोदोषस्यवाभवेत् ॥१८४॥
नेत्रघ्राणस्रुतिर्यावत्तावद्गण्डूषधारणम् ॥ १८५ ॥

अर्थ–पांचवर्षसे कवल और गण्डूषधारण करे। स्वस्थ होकर मुखमें गण्डूष धारणकरे। और तालु, गला, मुखके पसीजनेतक छय, आठ, तीन, पांच, अथवा सातवार दोष-नाशक गण्डूषको धारण करना चाहिये। जबतक मुखकफ

पूर्ण नहो, दोष दूर नहो, नेत्र और नासिकासे पानी न निकले तबतक गण्डूष धारण करे ॥ १८३ ॥ १८४ ॥ १८५ ॥

यस्यौषधस्यगण्डूषस्तस्यैवप्रातिसारणम्।
कवलश्चापितस्यैवज्ञेयोऽत्रकुशलैर्नरैः ॥ १८६ ॥

अर्थ–जिस २ औषधिसे गण्डूष धारण करनेकी विधि वर्णन कर आये है, अतिसारण और कवलभी उन्हें द्रव्योंसे प्रयोग करे ॥ १८६ ॥

व्याधेरपचयस्तुष्टिर्वैशद्यंवक्त्रलाघवम्।
इन्द्रियाणांप्रसादश्चगण्डूषेशुद्धिलक्षणम् ॥ १८७ ॥
हीनयोगात्कफोत्क्लेशोरसाज्ञानारुचिस्तथा।
अतियोगान्मुखंपाकःशोषस्तृष्णाक्लमोभवेत् १८८

अर्थ–जो भलीभांतीसे गण्डूषप्रयोग होजाय तो रोगनाश, मुखका निर्मलता, हलकापन और सब इन्द्रियोंकी प्रसन्नता, होती है। ऐसे लक्षण प्रकाशित होंतो जानेकी गण्डूषका शुद्ध धारण हुआ। भलीभांति गण्डूषके धारण नहोंनेसे कफोत्क्लेश रसज्ञानकी अलपता और अरुचि उत्पन्न होती है।आधिक क्रियासे मुखपाक,शोष,प्यास और क्लान्ति उत्पन्न होती है ॥१८७॥१८८॥

अन्यच्च।

सुखंसञ्चार्यतेयातुसामात्राकवलेहिता।
असञ्चार्यतुयामात्रागण्डूषेसाप्रकीर्त्तिता ॥ १८९ ॥

अर्थ–जितनी मात्राका द्रव्यद्रव्य मुखमें रखनेंसे सहज ही चलायमान किया जासके उसही परिमाणसे कवलके योग्य मात्रा है। और द्रव्यकी जितनी मात्रा मुखमें धारण करनेसे चलायमान नहोसकै, वह गण्डूषकी योग्य मात्राहै ॥ १८९ ॥

अथ रक्तमोक्षणविधिः।

अतिस्रुतौहिमृत्युःस्याद्दारुणावानिलामयाः॥१९०॥

अर्थ-अधिक रुधिर निकलनेंसे मृत्यु अथवा दारुण वायुरोग उत्पन्न होताहै ॥ १९० ॥

प्रसन्नवर्णेन्द्रियमिंद्रियार्थानिच्छन्तमव्याहतशक्तिवेगम्
सुखान्वितंपुष्टिबलोपपन्नंप्रसन्नरक्तंपुरुषंवदन्ति १९१॥

अर्थ-रक्तके शुद्ध रहनेंसे वर्ण और इन्द्रियोंकी प्रसन्नता, सब क्रियाओंके करनेमें इन्द्रियोंकी सामर्थ्य,अरोकशक्ति, मल-मूत्रादिका ठीक २ उतरना, सुस्थता, शरीरमें पुष्टि और बल उत्पन्न होता है ॥ १९१ ॥

नह्यूनषोडशातीतसप्तत्यर्वास्नुतासृजाम् ॥ १९२॥

अर्थ-सोलह वर्षसे कम अथवा ७० वर्षसे अधिकके मनुष्यका रक्तमोक्षण (फस्त) करना उचित नहीं है॥ १९२ ॥

अस्निग्धास्वेदितात्यर्थस्वेदितानिलरोगिणाम्।
गर्भिणीसूतिकाजीर्णपित्तास्रश्वासकासिनाम् १९३
अतिसारोदरच्छर्दिपाण्डुसर्वाङ्गशोषिणाम्।
स्नेहपीतप्रयुक्तेषुतथापंचसुकर्म्मसु ॥१९४॥
नायन्त्रितांशिरांविध्येन्नतिर्यङ्नातिचोत्थिताम्।
नातिशीतोष्णवातार्तेष्वन्यत्रात्ययिकाकृतात् ९५

अर्थ-रूखे, जिसको पसीना न आताहो, जिसको बहुत पसीना आताहो, वातरोगयुक्त, गर्भिणी, सूतिका, अजीर्ण, रक्तपित्त, दमा, खाँसी अतिसार, उदर, वमन, पाण्डुसे घिरेहुए, और अतिदुबले, स्नेहपीत, और पंचकर्मवाले पुरुषकी फस्त न खोले। जो शिरा वेगके योग्य है तो तिरछे भावसे उनकी शिराको नबेधै। अत्यन्त, शीत, अत्यन्त गरम, अत्यन्त वायु या अवरके दिन फस्त नहीं खोलना चाहिये। परन्तु मारात्मक व्याधि होतो निषिद्धकालमेंभी शिरावेध करे ॥ १९३॥१९४॥१९५ ॥ (इति रक्तमोक्षणम्)

अथ घृततैलमूर्च्छाविधिः ।

(घृतमूर्च्छाविधिः)

पथ्याधात्रीविभीतैर्जलधररजनीमातुलुङ्गद्रवैश्च ।
द्रव्यैरेतैःसमस्तैःपलकपरिमितैर्मन्दमन्दानलेन ॥
आज्यप्रस्थंविफेनंपरिचपलगतंमूर्च्छयेद्वैद्यराजः ।
तस्मादामोपदोषंहरतिचसकलंवीर्यवत्सौख्यदायी १९६

अर्थ-घृतमूर्च्छाविधि । हरड, बहेडा, आमला, मोथा; हलदी, विजौरा, नींबूका रस, यही छय घृतको मूर्च्छित करनेके द्रव्य हैं । इनमेंसे प्रत्येकका परिमाण एकपल (८ तो०) ग्रहण करके, ४ सेरघी चौगुने जलके साथ मन्दी आगके तापसे पकावै । पहले घीको पकावै, जब फेनरहित हो जाय, तब मूर्च्छाके समस्त द्रव्य घीमें डालै । मूर्च्छा करनेसे घृतका आमदोष नाश होकर वह वीर्यवन्त और सुखदायी होजाताहै ॥ १९६ ॥

कटुतैलमूर्च्छाविधिः ।

वयस्थारजनीमुस्तबिल्वदाडिमकेशरैः ।
कृष्णाजीरकह्रीबेरनालिकैःसविभीतकैः ॥ १९७ ॥
एतैःसमांसैःप्रस्थेचकर्षमात्रंप्रयोजयेत् ।
कटुतैलंपचेत्तेनआमदोषहरंपरम् ॥ १९८ ॥

अर्थ-कडवे तेलको मूर्च्छित करनेकी विधि । आमला, हलदी, मोथा, बेलकी छाल, दारवीकी छाल; नागकेशर, कालाजीरा, वाला, यवारी बहेडा, और मजीठ यह ग्यारह द्रव्य कडुवे तेलको मूर्च्छित करते हैं । ४ सेर तेलमें दोदो तोला यह ग्यारह चीजें डालै और ४ गुने जलसे सिद्धकरे; इसके पाककी विधि पहलेकी अनुसार है । मूर्च्छासे कडवे तेलका आमदोष नष्ट होजाता हे ॥ १९७ ॥ १९८ ॥

एरंडतैलमूर्च्छाविधिः।

विकसामुस्तकंधान्यंत्रिफलावैजयन्तिका।
ह्रीबेरघनखर्जूरवटशृङ्गानिशायुगम् ॥ १९९ ॥
नलिकाभेषजंदेयंकेतकीचसमंसमम्।
प्रस्थेदेयंशाणमितंमूर्च्छनेदधिकांजिकम् ॥२०० ॥

अर्थ-अण्डीके तेलको मूर्छित करनेकी विधि-मजीठ मोथा, धनिया, आमला, बहेडा जयंती; वाला, खजूर बढकी दाढी, हलदी, दारुहलदी यवारी, केतकी, दही और कांजी इनसे अण्डीका तेल मूर्च्छित होताहै। इनका परिमाण बराबर है। चारचार तोला इन सब चीजोंको लेकर ४ सेर तेलमें पाक करे। विधि पहलेकी अनुसार है१९९॥२००

तिलतैलमूर्च्छाविधिः।

मञ्जिष्ठारात्रिलोध्रैर्जलधरनालैकैःसाक्षपथ्यैःकुमार्या।
सूचीपुष्पांघ्रिनीरैरुपहितमथितैर्गन्धयोगंजहाति ॥
तैलस्येन्दुकलांशिकैकविकसाभागोऽपिमूर्च्छाविधौ।
येचान्येत्रिफलापयोदरजनीह्रीबेरलोध्रान्विता ॥
सूचीपुष्पवटावरोहनालिकास्तस्याश्चपादांशिकाः।
दुर्गन्धंविनिहन्तितैलमरुणंसौरभ्यमाकुर्वते ॥ २०१ ॥

अर्थ-तिलके तेलको मूर्च्छित करनेकी विधि। मजीठ, हलदी, लोध, मोथा, यवारी, आमला, बहेडा, हरड, केडया-जटा, बडकी दाढी और वाला, इन सबका चूर्ण जलमें मिला-कर तेलमें डालै। और उसमें तेलसे चौगुना जल मिलाकर पाककरे, जब कुछ जल रहजाय तो उतारकर थोडे दिनों-तक वैसेही रक्खा रहनेदे। इन हलदी और मजीठादि द्र-व्यको मूर्च्छाद्रव्य कहते हैं। इनके परिमाणका नियम यह है कि,जितना तेलहो,तेलके सोलहवाँ हिस्सा मजीठ,मजीठका

चौथा अंश जितना हो, उसकी बराबर और सब द्रव्य लेले अर्थात् तेलका परिमाण १६ सेरहो, तो मजीठ एक सेर और हलदी लोधआदि जो और पदार्थ हैं इनमेंसे प्रत्येक पावपावभर ले । मूर्च्छित होनेसे तेलमें दुर्गन्ध नहीं आती, उत्तम सुगन्ध आकर रंगमें लाली आ जाती है। तेलके साथ दूसरे क्काथादिका पाक करनेके समय समस्त मूर्च्छित द्रव्योंको छान लेना चाहिये ॥ २०१ ॥

कृत्वातैलंकटाहेदृढतरविमलेमन्दमन्दानलैस्त-
त्तैलंनिष्फेनभावंगतमिहचयदाशैत्ययुक्तंतदैव। २०२

अर्थ-पहले मजबूत कढ़ाईमें मन्दी २ आग देकर तेलको पकावै । जब झाग उठने बन्द होजाय, तब चूल्हेपरसे उतार ले । जब ठंढा होजाय तो पीसी (जलमें पीसी हुई) हलदी पानीमें घोलकर क्रमानुसार तेलमें डालै, फिर कूटकर जलयुक्त मजीठ धीरे २ तेलमें डाले, फिर मूर्च्छा-के और द्रव्य क्रमानुसार तेलमें डालै ॥ २०२ ॥

तैलमूर्च्छा ।

पत्रंपंचरसैर्युक्तंदधिलाक्षासमन्वितम् ।
मूर्च्छनंकारयेत्प्राज्ञोगन्धवर्णंजहातिच ॥२०३॥

अर्थ-पंचरसयुक्त पंचपल्लव और दही व लाखसे मूर्च्छा-पाक देना उचितहै। इस्से तेलका असलीरंग दूरहोजाता है; दुर्गंध नाश होतीहै । उत्तमरंग और उत्तम सुगन्ध होती है ॥ २०३ ॥

आम्रजम्बूकपित्थानांबीजपूरकबिल्वयोः ।
गन्धकर्मणिसर्वत्रपत्राणिपंचपल्लवम् ॥ २०४ ॥

अर्थ-आम, जामन, कैथ, विजौरानीबू और बेल इन पंच-पत्रसे गन्धपाकदे ॥ २०४ ॥

अथगन्धद्रव्यम् ।

एलाचन्दनकुंकुमाऽगुरुमुराकक्कोलमांसीशठी ।

श्रीवासच्छदग्रन्थिपर्णशशभृत्क्षौणिव्रजोशीरकम् ॥
कस्तूरिनखपूतिशैलजशुभामेथीलवङ्गादिकम् ।
गन्धद्रव्यमिदंप्रदेयमखिलंश्रीविष्णुतैलादिषु २०६

अर्थ–गन्धद्रव्य यथाः–इलायची, लालचन्दन, कुंकुम, अगर, कपूरकचरी, बालछड, कचूर, सफेदचन्दन, गठिवन, कपूर, शिलारस (लोबान), खस, कस्तूरी, नखी, गन्धमार्जारवीर्य्य, गजपीपल, प्रियंगु, मेथी और लौंगादि यह समस्त गन्धद्रव्य विष्णुतैलादिमें डाले॥ २०५ ॥ २०६ ॥

अपरंगन्धद्रव्यम् ।

देवदारुसरलागुरुत्वचंतेजपत्रघनकुष्ठकुंकुमम् ।
ग्रन्थिपर्णिशठिकोग्रगन्धकंमांसिकानखखोटिकुन्दुरु॥७
पूतिकंमधुरिकैलरानखीचन्दनंसमपरंप्रियङ्गुकम् ।
मेथिकामदसुवास्यचंपकंदेवताडनालिकासपृक्कया॥८॥
कक्कोलकंकल्कसमानितैलेदेयानिसर्वाणिसुगन्धिकानि।
अन्यान्यशेषाणिहितानिवैद्यैर्वातापहारीणिसुयोजितानि

अर्थ–और गन्धद्रव्य–देवदारु, धूपसरल, अगर, दालचीनी, तेजपात, मोथा, कुडा, कुङ्कुम, गठिवन, गन्धपलाशी, बालछड,कुंदरू, गन्धमार्जारवीर्य, सोया, इलायची, नखी, चन्दन, प्रियंगु, मेंथी, कस्तूरी, सुगन्धितचंपा, देवदारु, यगरी, असवर्ग, और शीतलचीनी, यह समस्त गन्धद्रव्य कल्ककी बराबर तेलमें डाले । चतुर वैद्य, औरभी वायु नाशक और हितकारी द्रव्य विचारपूर्वक तेलमें डालदे ॥२०७॥२०८॥२०९

तैलाद्गन्धस्यपादार्द्धंदद्यात्तच्छास्त्रविद्भिषक् ।
केचिद्गंधसमंमन्येसर्वत्रगन्धकर्म्माणि ॥ २१० ॥

इति ग्रन्थान्तरस्य ।

अर्थ–शास्त्रके जाननेवाले वैद्यको चाहिये कि, तेलको आठवें हिस्सेकी बराबर सब जगह गन्धद्रव्य डाले । कोई २कल्ककी बराबर गन्धद्रव्य डालनेकी कहते हैं ॥ २१० ॥

मतान्तरे ।

कुष्ठञ्चनालुकापूतिरुशीरंश्वेतचंदनम् ।
जटामांसीतेजपत्रनखीमृगमदःफलम् ॥ २११ ॥
कक्कोलंकुंकुमंचोचंलताकस्तूरिकावचा ।
सूक्ष्मैलाऽगुरुमुस्तंचकर्पूरंग्रन्थिपर्णकम् ॥ २१२॥
श्रीवासःकुन्दुरुदेवकुसुमंगन्धमातृका ।
सिह्लकंमिषिकामेथीभद्रमुस्तंशठीतथा ॥२१३ ॥
जातीफलंशैलजञ्चदेवदारुसजीरकम् ।
एतानिगन्धद्रव्याणितैलपाकेषुयुक्तितः ॥ २१४ ॥

अर्थ–दूसरे मतसे गन्धद्रव्य–कुडा, यचोरी, गन्धमार्जारवीर्य्य, खस, सफेदचन्दन, बालछड, तेजपात, नखी, कस्तूरी, शीतलचीनी, कुङ्कम, दालचीनी, मुश्कदाना,वच, छोटी इलायची, अगर, मोथा, कपूर, गठिवन, धूपसरल, कुन्दुरू, लौंग, गन्धमालती, शिलारस, सोया, मेथी, नागरमोथा, गजपीपल, जायफल, गन्धपलाशी, देवदारु और जीरा तेलके पाकमें यह समस्त गन्धद्रव्य डाले ॥ २११ ॥ २१२ ॥ २१३ ॥ २१४ ॥

इति सानुवादवैद्यकपरिभाषाप्रदीपसंग्रहे चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

समाप्तोऽयं ग्रंथः ॥

शुभमस्तु ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना–बंबई.